ब्रह्मवाणी चर्चा

(श्री राजन स्वामी जी द्वारा)

ब्रह्मवाणी चर्चा

(श्री राजन स्वामी जी द्वारा)

स्थान : माडल टाऊन, दिल्ली

विषय–सूची

पृष्ठ संख्या

- 'दुख रे प्यारो मेरे प्रान को। 1-22
  सो मैं छोड़यो क्यों कर जाए, जो मैं लियो है बुलाए।।'

- 'इन झूठी जिमी में केहेत हों, सांच झूठ हैं दोए। 23-46
  जब आगूं अर्स के देखिए, तब इनमें न सांचा कोए।।

- 'महामत कहे सुनो साथजी, बुध जुबां करे बरनन। 47-71
  ले सको सो लीजियो, ए नेक कह्या तुम कारन'।।

- तिन सब जिमी में बस्ती, कहूं पाइए नहीं वीरान। 72-96
  पातसाही पसुअन की, और जानवरों की जान।।

- अरवा आसिक जो अर्स की, ताके हिरदे हक सूरत। 97-117
  निमख न न्यारी हो सके, मेहेबूब की मूरत।।

- महामत कहे बोलूं हुकमें, अर्स मसाला ले। 118-142
  दरगाही रूहन को, सुख असल देने के।।

'दुख रे प्यारो मेरे प्रान को। A
सो मैं छोड़यो क्यों कर जाए, जो मैं लियो है बुलाए।।'

अक्षरातीत धाम के धनी ने इस प्रकरण में सब सुन्दरसाथ के लिए बहुत बड़ा सिखापन दिया है। महामति जी कहते हैं कि 'दुख रे प्यारो मेरे प्रान को'। संसार में तीन चीजें बहुत बुरी लगती हैं सबको। एक तो बुढ़ापा, एक मृत्यु और एक दुख। तीनों को कोई नहीं चाहता। लोग परमात्मा से जुड़ते हैं, उसमें 99 प्रतिशत कारण इन तीनों से निवृत्ति होती है। न्याय दर्शन में गौतम ऋषि ने कहा है, कि मुक्ति किसको कहते हैं ? जिसमें दुख का पूर्णतया निषेध हो जाए। चेतन तीन चीजें चाहता है– प्रेम चाहेगा, शांति चाहेगा और आनंद चाहेगा। कोई भी अशांति नहीं चाहता, कोई भी दुख नहीं चाहता। इन्हीं तीनों को पाने के लिए वो सब कुछ करता है। किसी को कह दीजिए कि तुम मरने वाले हो, वो सहन नहीं कर सकता। हास्पिटल में रह लेगा, लेकिन मौत का भय सुन कर के वो कांपता है। महामति जी की आत्म कहती है कि 'दुख रे प्यारो मेरे प्रान को', मुझे दुख प्राणों से भी प्यारा है। पाठ क्यों रखवाए जाते हैं ? दुखों से छुटकारे के लिए। मेहेर सागर का पाठ क्यों किया जाता है? दुखों से छुटकारे के लिए। कोई महात्मा, सिद्ध पुरूष जनता के बीच में क्यों लोकप्रिय हो जाते हैं ? क्योंकि वो जनता की इच्छाओं पर खरे उतरते हैं। यदि उन्होंने लोहे को सोना बनाने की विद्या दे दी, यदि उन्होंने कोई आशीर्वाद दे दिया कि उनकी दुकान चल जाए, उनका व्यापार चल जाए, तो देखिए लाइन लग जाएगी और दुनियां की नजरों में वो सिद्ध पुरूष हो गया। कल्पना कीजिए किसी सिद्ध पुरूष के आशीर्वाद से आप के पास हीरे ही हीरे हो गए, फिर ये हीरे क्या करेंगे आप ? उससे अरबों खरबों की सम्पत्ति इकट्ठी कर सकते हैं। फिर उस सम्पत्ति से क्या करेंगे ? अच्छा इतना ही कर सकते हैं कि

अच्छा से अच्छा भोजन कर सकते हैं, अच्छे से अच्छे मकान बना सकते हैं, लेकिन आपकी मृत्यु का एक दिन बढ़ नहीं जाएगा। अशांति आपके चारों तरफ घिर जाएगी। ये ही तो आकर्षण है। सत्य का मुख सोने के बर्तन में ढका हुआ है। ये संसार क्या है ? सोने का बर्तन, सुनहरा बर्तन और मनुष्य इसी पर मोहित हो जाता है। गोविंद भेड़ा का यह भूत मंडल है। हमने अच्छे भोजन कर लिये, तो हम खुश हो जाते हैं कि आज तो बहुत मज़ा आ गया। अच्छे–अच्छे कपड़े पहन लिये, अच्छे–अच्छे फ्लाइटों में घूम लिये, अच्छे–अच्छे महलों में रह लिए, तो इसको हम आनंद समझते हैं जबकि यही तो बड़ी भ्रांति है। हमारे अंदर की चेतना को इसमें भटकाया जा रहा है। ये शाश्वत शांति नहीं है। यदि इसमें शांति मिलनी होती तो गौतम बुद्ध को अपना घर–द्वार छोड़ने की क्या जरूरत पड़ती ? महामति जी ने कहा, –

'मैं तो बिगड़या विश्व थें बिछुरया, बाबा मेरे ढिग आओ मत कोई'।

मेरे पास किसी को आने की जरूरत नहीं है क्योंकि जैसे मैं संसार से बिगड़ा हूं, यदि तुम मेरे साथ आओगे, तो तुम भी बिगड़ जाओगे। ये माया अपने लुभावने पदार्थों से चेतन प्राणी को लुभाती है। ध्यान रहे धन हमेंशा स्थिर नहीं रहता यौवन हमेशा स्थिर नहीं रहता, सगे संबंधी भी हमेशा स्थिर नहीं रहते। स्थिर है केवल आत्मा। स्थिर है केवल परमात्मा जो अखंड है, अविनाशी है, चेतन है, उसकी तरफ मनुष्य की दृष्टि बहुत कम जाती है। जो नश्वर पदार्थ है, उनकी तरफ वो भागता रहता है और अन्ततोगत्वा उसको निराशा मिलती है। दुख की उपयोगिता इस प्रकरण में बताई गयी है कि दुख हमारे लिए कितना महत्वपूर्ण है। कपिल जी ने सीधे शब्दों में कहा है कि इस सृष्टि में कोई भी, कहीं भी सुखी नहीं है। आप किसी

व्यक्ति से पूछिए कि क्या आप सुखी हो ? उसके पास करोड़ों की दौलत होगी, परिवार में भी सब कुछ रहेगा लेकिन क्या उनको मानसिक शांति है ? यदि मानसिक शांति थोड़े समय के लिये है भी तो आत्मिक शांति नहीं। आत्म जागृति के लिए दुख अनिवार्य है। जितने सुन्दरसाथ बैठै हैं, सब से पूछा जाए, सुख कितने चाहेगें, दुख कितने चाहेंगे ? मैं समझता हूं सौ में एक सुंदरसाथ भी कह दे कि नहीं, हमें माया का सुख नहीं चाहिए, तो मेरे लिए बहुत खुशी की बात होगी। लेकिन मुझे नहीं लगता। यदि राजजी ने आपका काम नहीं किया, आपकी माया की ख्वाहिशों को पूरा नहीं किया, तो आप कहते हैं कि इससे अच्छे तो देवी–देवता हैं जो हमारी माया की ख्वाहिशें पूरी कर देते हैं। हमारी आस्था टूट जाती है। सीता ने राम के साथ वन में 14 वर्ष का वियोग झेला, लेकिन सीता ने कभी गिले शिकवे नहीं किए कि मर्यादा पुरूषोतम! आपके साथ रहने से मुझे जंगल में कंदमूल खाना पड़ता है, मैं अपने पिता के घर सोने के महल में रहती थी और आपने मुझे झोपड़ी में रख दिया। कोई गिला शिकवा नहीं। सावित्री ने कोई गिला शिकवा नहीं किया। सावित्री को पहले ही बता दिया गया था कि देखो सावित्री, जिस सत्यवान के पीछे तुम भागी फिर रही हो, वो सत्यवान केवल एक साल का मेहमान है। सावित्री ने कहा कि एक साल तो क्या, मैं एक दिन के लिए भी पाकर के धन्य हो जाऊंगी और वो राजा अस्वपति, चक्रवर्ती सम्राट है, उनकी लाडली बेटी है, पुत्र भी नहीं, अकेली बेटी। सत्यवान के साथ ब्याह दी जाती है। जंगल से लकड़ियां लाती है, उसको बेचा जाता है, जो उससे धन मिलता है, उससे अन्न खरीद कर के सत्यवान भी भोजन करते हैं, सावित्री भी भोजन करती है और सत्यवान के माता पिता भी भोजन करते हैं। इसको कहते हैं पतिव्रता धर्म। कोई गिला शिकवा नहीं। चक्रवर्ती सम्राट की बेटी जंगल में रहने

वाले एक युवक के साथ अपना संबंध जोड़ती है और उसके दुख में खुश है। आज हम कहां खड़े हैं? यदि हमारे 108 बार मेहेर सागर के पाठ करने पर राजजी हमारी इंछित मनोकामना को पूर्ण नहीं करते तो ऐसा लगता है कि राजजी बिल्कुल बेकार हैं। इससे अच्छा तो हम हनुमान के भक्त हो गए होते, देवी के भक्त हो गए होते। राजजी से हमारा प्रेम केवल इतना है कि हमारी माया की इच्छायें पूरी कर दें। ये तो प्रेम नहीं हुआ। हमारे प्रेम से तो अच्छा सावित्री का प्रेम है, सीता का प्रेम है, द्रौपदी का प्रेम है। 12 वर्ष तक वनवास और एक साल तक अज्ञातवास, द्रौपदी रहती है। हां, द्रौपदी गिले शिकवे जरूर महाभारत में कर देती है। सीता ने कभी गिला शिकवा नहीं किया। सीता का राम दोबारा परित्याग भी करते हैं, इसके बावजूद भी सीता अपने मुख से राम के खिलाफ एक शब्द भी नहीं बोलती कि राम ने गलत किया है और हम राजजी पर कितनी तोहमतें लगाते हैं कि राजजी बेकार कर दिया, राजजी आपने कुछ कर दिया। क्यों ? हमारे अंदर अभी प्रेम नहीं है। इंद्रावती जी की आत्म के द्वारा धाम धनी हमें तरह–तरह के सिखापन दे रहे हैं,–'जिन जुबां मैं दुख कहूं, सोए करूं सत टूक', महामति जी का कथन है राजजी की तरफ से कि मैं परमधाम की आत्माओं के लिए दुख शब्द का उच्चारण भी नहीं कर सकता। यदि मेरे मुख से, जिह्वा से दुख शब्द निकल जाए तो मैं अपनी जिह्वा को सौ टुकड़े कर दूं।

'अब दुख न देऊं फूल पांखड़ी, देखूं सीतल नैन।
उपजाऊं सुख सब अंगों, बोलाऊं मीठे बैन।।'

जो ये कहते हैं के फूल की पांखुड़ी से मारने पर तुम्हें कष्ट होता है, तो मैं उतना भी कष्ट तुमको नहीं दूंगा। लेकिन वो क्या करें ? आप के हाथ में घाव हुआ है, उसकी पट्टी करने पर तो पीड़ा जरूर झेलनी पड़ेगी। इन्जैक्शन सुन का लगा कर के भी

आपरेशन किया जाएगा, बाद में पीड़ा तो झेलनी पड़ेगी। हम कहते हैं कि नहीं, हमें इस घाव को ठीक नहीं कराना है, डाक्टर तो करेगा। चाहे आप चीखिए, चाहे आप चिल्लाइए। क्योंकि उसको मालूम है कि यदि ये घाव ऐसे ही रह गया तो कैंसर बन जाएगा और उसको बचाना मुश्किल हो जाता है। इसी तरह से संसार के सुख हमारे लिए कैंसर, एक घाव है। संसार के सुखों से यदि निकालने के लिए राजजी हमारा इलाज नहीं करेगें, हमको दुख नहीं देगें, तो हम संसार का मोह किसी भी कीमत पर छोड़ नहीं सकते। न घर का कोई मोह छोड़ सकता है, न सगे संबंधियों का मोह छोड़ सकता है और न अपने शरीर का मोह छोड़ सकता है। ये शरीर किसलिए मिला है ? इसी शरीर से परमात्मा का ध्यान होता है। इसी शरीर से हम यहां बैठे–बैठे परमधाम को देख सकते हैं। यदि इसी शरीर से हम विषयों की तरफ मुड़ते हैं, तो ये जीवन हमारा निरर्थक चला जाता है। शरीर के नौ द्वारों से क्या निकलता है ? केवल गंदगी। कहीं से चीरा लग जाए तो खून निकलने लगता है। कपड़े गंदे हो जाते हैं। जुकाम हो जाता है, तो हम परेशान हो जाते हैं। कितनी शरीर में गंदगी भरी है। लेकिन ये शरीर परमात्मा से मिलन करवाता है। ये शरीर यहीं बैठे–बैठे हमें परमधाम दिखा देता है। इस शरीर में जो हमारी चेतना बैठी हुई है, हमारी आत्मा है, उसके धाम हृदय में पूरा परमधाम विराजमान हो जाता है। यहीं से बैठे–बैठे हम 25 पक्षों को देखते हैं, रंग महल को देखते हैं, हौज कौसर देखते हैं, मानिक पहाड़ देखते हैं, पुखराज देखते हैं। ये किसके माध्यम से ? इसी शरीर के माध्यम से। इस का उपयोग या दुरूपयोग ये हमारे ऊपर है और हमारा विवेक किधर ले जा रहा है ? ये हम खुद अपनी अन्तर आत्मा से पूछ सकते हैं। जो धाम धनी कहते हैं कि मैं सपने में भी दुख नहीं दे सकता, वो धाम धनी आपको दुख क्यों देगें ? राजजी कोई

कसाई थोड़ी हैं ? एक कसाई तो बकरा काटता है उसका मांस बेचता है प्राफिट के लिए। अक्षरातीत हमसे कितना प्रेम करते हैं? हम ये खुद नहीं जान सकते। हमारी बुद्धि इसका आंकलन ही नहीं कर सकती है। धाम धनी ने संसार के पक्षियों का एक उदाहरण दिया है। 'दुनी पंखी बिछोहा न सहे' अर्थात संसार के जो पक्षी होते हैं, वो एक दूसरे का वियोग सहन नहीं कर पाते। मैंने दो बार शायद उदाहरण दिया होगा–लव बर्डस का। दोनों पक्षियों के जोड़े में से किसी को हटा दीजिए, तो पांच मिनट में तड़प–तड़प के प्राण छोड़ देते हैं 'गिरत है आकाश से होत है पुरजा–पुरजा'। इन पक्षियों की विशेषता भी ऐसी होती है कि आकाश में यदि एक की मृत्यु हो जाती है, तो दूसरा तड़प–तड़प कर, गिर कर प्राण छोड़ देता है। यदि दुनियां के पक्षी इतना प्रेम कर सकते हैं, कालमाया के, तो जो परमधाम में सारे इश्क का केंद्र हो, वो हमसे कितना प्रेम कर सकता है ? यदि राजजी ने हमारे बेटे की नौकरी नहीं लगवाई, यदि राजजी ने हमारी दुकान नहीं चलवाई, यदि राजजी ने हमारा बिजनेस नहीं बढ़ाया, तो हम क्या सोचते हैं ? राजजी बिल्कुल बेकार हैं। वो तो हमको माया में दुख में भेज दिया। हमें कुछ नहीं देते। इसलिए क्योंकि हमारा प्रेम खुद कलंकित है। हमारे अंदर प्रेम नहीं है, स्वार्थ है। राजजी हमको माया से निकालना चाहते हैं, इसलिए माया से निकालने के लिए उन्होंने हमें दुख दिखाना ही है हर हालत में। तभी इस प्रकरण की पहली चौपाई में कहा है, – 'दुख रे प्यारो मेरे प्राण को' यदि हम जागृत होना चाहते हैं, तो हमें दुख जरूरी है।

'दुख से विरहा उपजे, विरहे प्रेम इस्क।
इस्क प्रेम जब आइया, तब नेहेचे मिलिए हक।।'

दुख का मतलब, विरह का दुख और दूसरा दुख वो जो राजजी की मेहेर से दिया जाता है। महामति जी ने कहा है, –

'जो साहेब सनकूल होवहीं, तो दुख आवे तिन।
इन दुनियां में चाह कर, दुख न लिया किन।।'
राजजी की मेहेर होती है तब हमें दुख मिलता है अन्यथा दुख मिल ही नहीं सकता। सुखों में तो संसार सारा लगा हुआ है। महामति जी ने स्पष्ट कह दिया, 'ता सुख को कहा कीजिए, जो देखलावे धरमराए'। कालमाया के ब्रह्मांड में आपने सुख ही सुख भोग लिया, आप अरबोपति हैं, केवल सुख ही सुख है, अच्छे भोजन मिल रहे हैं अच्छे वाहनों में घूम रहे हैं लेकिन आपके अंदर ज्ञान नहीं है, भक्ति नहीं है, विवेक नहीं है, वैराग्य नहीं है, तो ये तो विषय सेवन हुआ। सांसारिक सुखों की प्राप्ति तो दुनियां के साधु महात्मा करा देते हैं, दुनियां के देवी–देवता करा देते हैं। हमें तो शाश्वत आनंद चाहिए। वो शाश्वत आनंद कहां मिलेगा ? यदि हमारी दृष्टि इस मायावी ब्रह्मांड से अलग नहीं होती तो हमें परमधाम का आनंद कभी भी नहीं मिल सकता। इस माया के संसार में शाश्वत सुख न है, न था और न कभी किसी को मिलने वाला है। वो एक काम चलाऊ आपको थोड़े समय के लिए दे दिया जाता है। अच्छे निवास हो, भोजन मिल जाए और सगे संबंधियों से मेल बना रहे। बस इतना है। इसमें आपको शाश्वत शांति नहीं मिल सकती। क्योंकि बड़ा से बड़ा योगी तपती दोपहरी में बैठकर तो ध्यान लगा नहीं सकता। कड़कड़ाती ठंड में उसको भी कुछ चाहिए, चाहे घास फूस से तन ढके या साधारण वस्त्रों से ढके। भोजन उसको भी चाहिए, चाहे वो कंदमूल–फूल खाए या सूखी रोटी खाए या अच्छे–अच्छे पकवान खाए। भोजन, आवास और, वस्त्र, ये मनुष्य की सामान्य आवश्यकतायें हैं, लेकिन इनमें शाश्वत शांति की आशा करना, ये सबसे बड़ी भूल है और इन्हीं के पीछे हम भागते हैं। ये सबसे बड़ी भूल है। धाम धनी परमधाम की आत्माओं को इनसे निकालकर परमधाम के अखंड आनंद में ले

जाना चाह रहे हैं।
दुख का भोग कौन करता हैं ? आपका जीव या आप का शरीर ? एक मुर्दे को आलीशान होटल में रख दीजिए, फाइव स्टार कमरे में। उससे क्या लेना देना उसको। शरीर सुख का भोग नहीं करता। जीव शरीर के माध्यम से, इंद्रियों और अन्तःकरण के माध्यम से सुख और दुख का भोग करता है। लेकिन जीव भी जब जागृत हो जाएगा तो उसको भी ये लगेगा कि ये कुछ नहीं है। वो भी दृष्टा होकर आत्मा की तरफ देखेगा। आत्मा मात्र दृष्टा है। आप सुखी होते हैं या दुखी होते हैं, इससे आपकी आत्मा का कोई लेना देना नहीं है। आत्मा न सुखी होती है, न दुखी होती है। जीव सुखी होता है, जीव दुखी होता है और आत्मा उसको देखती रहती है, हां, सुख में जीव इतना खुश होता है, दुख में इस तरह से बिलख–बिलख कर रोता है। यदि किसी के घर में आग लग जाए तो देखिए किस तरह से रोना–पीटना शुरू हो जाता है। विवेकानंद ने यही पूछा था रामकृष्ण परमहंस जी से, गुरूदेव! आप दावे से कहते हैं, कि मैंने परमात्मा को देखा है, तो आप सबको क्यों नहीं दिखा देते ? ये सब लोग क्यों नहीं देख लेते ? रामकृष्ण परमहंस ने कहा कि नरेन्द्र! बताओ, कितने लोग देखना चाहते हैं ? स्त्री के लिए, बच्चों के लिए, धन के लिए लोग घनों आंसू बहाते हैं। क्या तुमने किसी को देखा है जो इस बात के लिए रोता हो कि मुझे परमात्मा क्यों नहीं दिखता ? क्योंकि यदि हमारे ज्ञान चक्षु नहीं खुलते तो हमें सत्य की प्रतीति नहीं हो सकती। जो संसार स्वतः ही दुखमयी है,–
'मोह अग्यान भरमना, करम काल और सुंन।
ए नाम सारे नींद के, निराकार निरगुन।।'
ये संसार क्या है ? मोहात्मक, मोहमयी। सतोगुण भी बंधन का कारण है, रजोगुण भी बंधन का कारण है और तमोगुण भी बंधन

का कारण है। तीनों गुणों का ये ब्रह्मांड है। हमारा शरीर, हमारी इंद्रियां, अन्तःकरण सभी इसी मोहमाया से बने हुए हैं फिर इस में दुख के सिवा और क्या मिल सकता है ? काजल की कोठरी में आप ये चाहें कि मेरे कपड़े में दाग न लगे, ये कभी भी संभव नहीं है। यदि आपको आनंद चाहिए तो आनंद के धाम की तरफ मुडना पड़ेगा। आपको प्रेम चाहिए, शांति चाहिए तो उसकी तरफ नजर करनी पड़ेगी। यदि इसी में भूल गए तो क्या होगा ? उस आनंद से आप वंचित हो जाएगें। इसलिए महामति जी सब सुंदरसाथ को इधर से हटाकर उधर की तरफ ले चलना चाह रहे हैं। ये उन्हीं के शब्दों में कहा जा रहा है, 'दुख रे प्यारो मेरे प्राण को','सो मैं छोड़यो क्यों कर जाए', मैं इन दुखों को क्यों छोड़ सकता हूं ? हर कोई मंदिर में किसलिए जाता है ? दुखों से मुक्ति के लिए, कि चलो इष्ट देवता के चरणों में मत्था टेकेगें, एक मिठाई प्रसाद चढ़ा देगें, पुजारी जी से या किसी साधु महात्मा से, महंत जी से सिफारिश कर देगें, वो परमात्मा से कह देंगें। हमारी सिफारिश पहुंच जाएगी, दुखों से मुक्ति हो जाएगी। बस दुनिया को इतनी इच्छा है। परमात्मा को पाने की इच्छा नहीं है। परमात्मा से प्रेम की इच्छा नहीं हैं। सीता कह सकती थी कि मर्यादा पुरूषोतम! मैं जनक दुलारी, महलों में रहने वाली, आपके साथ इसलिए थोड़ी मेरा विवाह हुआ था कि मैं जंगलों में 14 साल गुजारूंगी। राम ने बहुत मना किया कि सीता तुम बंदर का चित्र देखकर डर जाती हो, तुम नहीं चलो। सीता का एक ही उत्तर है कि जहां आप नहीं, मेरे लिए वो शमशान है। अयोध्या का सिंघासन, अयोध्या के ये सोने के महल, मेरे लिए शमशान हैं। हमारे साथ उल्टी लीला हो रही है। राजजी कहते हैं कि देखो, तुम इस दुनियां में ईंटों और पत्थरों के मकान में रहते हो, तुम्हारी अंगूठी में एक लाख रूपये तो क्या पचास हजार का भी हीरा नहीं होता और तुम्हारा पूरा

हौज कौसर केवल हीरे ही हीरे का है। तुम्हारे पास पुखराज का कोई एक चबूतरा नहीं होगा, और पुखराज का पूरा पहाड़ ही तुम्हारे पास है। एक–दो नहीं, असंख्यों महल हैं। जितनी तुम अनंतता की कल्पना कर सकते हो, तुम्हारे परमधाम के एक एक कण में अरबों खरबों सूर्यों के बराबर हीरे मोतियों का प्रकाश है और उससे ज्यादा आनंद है। ये कह रहे हैं कि तुम इधर देखना छोड़कर मेरे धाम की तरफ देखो, मेरी तरफ देखो, तो तुम्हें यहीं बैठे–बैठे सब कुछ नजर आएगा। परमधाम कितना अनंत है, परमधाम का आनंद कितना है और इस माया में दुख कितना है। राजजी को भी याद किसलिए करते हैं ? मजबूरी में। मजबूरी क्या है ? यदि राजजी को याद नहीं करेगें तो लोग कहेगें कि नास्तिक है। हो सकता है राजजी नाराज हो जाएं, इसलिए हमें माया के सुख भी मिलते रहें, तो दो–चार मिनट बैठ कर के तारतम का पाठ कर लिया, वाणी की पांच चौपाई पढ़ ली या राजजी को थोड़ा बहुत याद कर लिया। ये तो औपचारिकता है। ये प्रेम का उपहास है। द्रौपदी का जीना मरना पांडवों के साथ है, सीता का जीना मरना राम के साथ है, सावित्री का जीवन सत्यवान के साथ है किन्तु हम राजजी के साथ नहीं हैं और यही हमारे दुख का कारण है। हमें अशांति क्यों है मन में ? इस अशांति को न्योता हम खुद दे रहे हैं क्योंकि प्रेम, शांति और आनंद का सागर, वो प्रियतम पारब्रह्म हमारी प्राण की नली से भी ज्यादा नजदीक है। हम समझते हैं कि वो हमसे बहुत दूर है। ये सबसे बड़ी भ्रांति है।

'हक नजीक सेहेरग से, आडा पट न द्वार।
खोली आंखें समझ की, देखती न देखे भरतार।।'

हम देखते हुए भी देख नहीं पा रहे हैं। हमारे ज्ञान चक्षु देख रहे हैं। आत्म चक्षु नहीं देख रहे। पढ़ते हैं कि राजजी मूल मिलावे में विराजमान हैं और हमारा दिल अर्स है। हम खूब गाते भी हैं,

'अर्स तुमारा मेरा दिल है, तुम आए करो आराम।'
जब आपका दिल ही अर्स है तो फिर आप दुखी क्यों हैं ? उस धाम हृदय में अपने प्रियतम की छवि को क्यों नहीं देखते ? क्योंकि हमारी और उनकी दृष्टि के बीच में एक हल्का सा, परदा आ गया है। जैसे पहाड़ की चोटी के सामने एक कागज अपनी आँखों के सामने रख दीजिए, आप पहाड़ की तलहटी में भी रहेंगे, आप की आँखों के सामने पहाड़ रहेगा, लेकिन वो कागज आपकी दृष्टि को रोक देगा। वैसे ही हमारी आत्मिक दृष्टि को रोका है माया की चाहनाओं ने। मैं ये नहीं कह रहा हूं कि आप अपनी सारी कोठियां बेच दीजिए, अपना सारा धन लुटा दीजिए और जंगल में निकल जाइए। घर में रहते हुए घर को छोड़ दीजिए, परिवार में रहते हुए भी परिवार को छोड़ दीजिए। सब कुछ करते हुए भी कुछ समय के लिए तो सबको भूलना पडेगा। 24 घंटों में से यदि एक घंटा भी सुन्दरसाथ सब को भुला दें, एक घंटा तो बहुत होता है। एक घंटा तो बैठने में लगता है। सुंदरसाथ के मन में जिज्ञासा होती है कि हम बैठते तो हैं, लेकिन हमारा मन नहीं लगता, मन भागता रहता है। आपने किस्सा सुना होगा, उस चोर का जो बन गया था महात्मा। रात को सोते समय सबके कमंडल उठा कर इधर–उधर चोरी कर के रख देता था। एक दिन पकड़ा गया। पूछा गया कि भई! तुम ऐसा क्यों करते हो ? कहने लगा, कि मैं क्या करूं ? पहले मैं चोर था, आदत कहां से छूटती है। क्योंकि जब तक वो एक का सामान, एक का कमंडल उठाकर दूसरे के पास नहीं रखता था, तब तक उसको नींद नहीं आती थी। ये आपका जीव लाखों जन्मों से कितनी योनियों में भटका है। कभी पशु पक्षी की योनि में गया, कभी चोर बना, कभी डाकू बना, कभी इसने मांस खाया, कभी शराब पिया। ये सारे संस्कारों को लिए बैठा है। एक सी डी हो, डी वी डी समझ

लीजिए आज के दृष्टांत से समझाता हूं। उसमें कितने दृश्य हैं, जब आप उसको सी डी प्लेयर में लगाते हैं, तो सारे दृश्य उभरने लगते हैं। उसी तरह से आपके चित्त में जन्म जन्मांतरों के संस्कार भरे पड़े हैं। काम, क्रोध, मद, लोभ, अहंकार, तृष्णा इसको व्याकुल किए हुए है। जब आप ध्यान में बैठते हैं, तो ये सारी तृष्णाएं उभरनी शुरू हो जाती हैं। पूर्व जन्मों के संस्कार छटपटाते हैं कि अब हमारे कत्ल होने का समय आ गया और वो तेजी से भागना शुरू होते हैं। आप पिक्चर देखेगें, माया का काम करेगें, कभी भी नींद नहीं आ सकती और आप ध्यान करने बैठेगें तो 90 प्रतिशत की शिकायत यही होती है कि या तो हमें नींद आ जाती है या हमारा मन भागने लगता है। आप गप्पे मारना शुरू कीजिए, निंदा करना शुरू कर दीजिए किसी की, किसी का मन कहीं नहीं जाएगा। यदि आप किसी का एक अवगुण बखानते हैं तो मन पूरी ताकत से सौ अवगुणों को खोजना शुरू कर देगा। बड़ा से बड़ा ध्यान करने वाला साधक भी होता है, यदि एक घंटा ध्यान में बैठता है, तो निश्चित है कि पंद्रह मिनट या आधा घंटा पहले उसका मन किसी भी कीमत पर एकाग्र नहीं हो सकता, वर्तमान समय में। क्योंकि आजकल का भोजन ही इतना दूषित होता है। यदि आपका भोजन सात्विक नहीं है तो किसी भी कीमत पर आपका ध्यान लगने वाला नहीं है। सुन्दरसाथ ये कहा करते हैं कि ये तो कर्मकांड है। ये कर्मकांड नहीं है। कर्मकांड उसको कहते हैं जिसमें इंद्रियों से कुछ किया जाता है। आप नाचते हैं, कूदते हैं, दौड़धूप कर के परिकरमा करते हैं, ये सब कुछ कर्म है, इंद्रियों से, शरीर से। ये अन्तः साधना का विषय है। यदि आपने खूब तीखी–तीखी मिर्चे खा ली, खूब खट्टाई खा ली और बैठ गए तुरंत ध्यान में। कहां से ध्यान लगेगा ? तामसिक भोजन आप कर रहे हैं तो स्वभाविक है कि मन चंचल रहेगा। जब आप

एकाग्र मन से ध्यान की तरफ बढते हैं, रजोगुण और तमोगुण के संस्कार सारे उभरने लगते हैं और मन भागने लगता है। लेकिन इसमें अधीर होने की कोई आवश्यकता नहीं। प्रेम कहता है, तुम सब कुछ लुटा दो। अभी, मैंने कुछ सतियों का उदाहरण दिया, इस माया की सतियां। सावित्री का दिया, सीता का दिया, द्रौपदी का दिया। अनसुया को देखिये। यदि अनसुया अपने सतीत्व के बल से ब्रह्मा, विष्णु और शिव को बालक बना सकती है तो राजजी का प्रेम आपकी आत्मा को कहां ले जा सकता है। लेकिन एक निष्ठा की जरूरत है। इन्द्रावती जी की आत्म कह रही है कि 'दुख रे प्यारो मेरे प्राण को, सो मैं छोडयो क्यों कर जाए।' आपने दुख दिया है, यह मुझे प्राणों से प्यारा है क्योंकि आप मुझसे इतना प्रेम करते हैं कि मुझे सपने में भी दुख दे नहीं सकते। यदि हमारी आत्मा जीव के ऊपर कुछ दुख को देख रही है तो इसमें कोई न कोई रहस्य छिपा हुआ है।

एक छोटा बच्चा, दस साल का है, अपने पिता को यदि ये कह दे कि पिता श्री, आप मुझे मारना चाहते हैं, हंसी में भी कह देगा तो पिता को सहन नहीं होगा। यदि पत्नी अपने पति से यह कह दे कि आप मुझे भिखमंगा बना कर के समाज में दिखाना चाहते हैं तो भी पति को सहन नहीं हो सकता और हम क्या कहते हैं ? राजजी आपने हमें दुखों में डाल दिया। यदि संसार का एक पति अपनी पत्नी के लिए आठ–आठ, दस–दस, बारह–बारह घंटे काम करता है, धूप में जगह–जगह धक्के खाता है, अक्षरातीत कहते हैं–

'रूहों मैं रे तुमारा आसिक, मैं सुख सदा तुमें चाहों।
वास्ते तुमारे कई विध के, इस्क अंग उपजाओं।।'

आसिक किसको कहते हैं ?

'रोम–रोम बीच रमि रह्या, पिउ आसिक के अंग।

इस्कें ले ऐसा किया, कोई हो गया एकै रंग।।'
आसिक के रोम–रोम में माशूक बसा होता है। हम राजजी को 24 घंटों में आधा घंटा, एक घंटा, दो घंटा, अधिक से अधिक तीन घंटा ध्यान कर सकते हैं। और राजजी, वो तो जागृत हैं, वो पल–पल हमको देख रहे हैं और तो और इतने नजदीक हो करके बैठे हैं कि उनके और हमारे बीच में कोई नाम मात्र की दूरी नहीं है। हम सोचते हैं कि राजजी मूल मिलावे में बैठे हैं, बहुत दूरी है, कोई जा नहीं सकता। संसार के लिए बहुत दूर है वो तो हमारे लिए सेहेरग से भी नजदीक है। प्राण की नली से भी ज्यादा नजदीक। एक परदा सा बना दिया है, हमारी दृष्टि ने बस संसार को देखना शुरू कर दिया है। आप पूर्व की दिशा में खड़े हैं। आपके पश्चिम में आपसे एक फुट की दूरी पर कोई व्यक्ति खड़ा हो जाए, आप की आँखें देख नहीं पा रहीं हैं, तो आप थोड़े ही कह सकते हैं कि वो व्यक्ति आपके पास नहीं है। बस इतनी सी बात है क्योंकि आपकी नजर पूरब की तरफ है, पश्चिम की तरफ नहीं। आप की दृष्टि माया की तरफ है, धाम धनी की तरफ नहीं। जिस क्षण आपके हृदय में प्रेम की धारा प्रवाहित होगी, आपके धाम हृदय में बैठा हुआ अक्षरातीत आपकी आत्मिक दृष्टि के सामने उपस्थित हो जाएगा लेकिन ये है प्रेम की कसौटी पर हमें खरा सिद्ध करना होगा स्वयं को। दुख मिलता है तो उसमें सुख छिपा हुआ है अखंड परमधाम का। कोई विरला ही होगा जो राजजी का ध्यान करे। हर कोई गिले शिकवे करता है कि परमात्मा ने सब काम अच्छा किया, पृथ्वी बनाई, आकाश बनाया, तरह–तरह की नदियां बनाईं, फल–फूल पैदा किए, लेकिन ये बुढ़ापा क्यों दे दिया ? मौत क्यों दे दिया ? रोग क्यों दे दिया ? तीनों से दुनियां बहुत घबराती है। मैं कहता हूं इन तीनों को बना कर के परमात्मा ने बहुत बड़ा उपकार किया। यदि मनुष्य को बुढ़ापा नहीं आता,

यदि मनुष्य रोगी नहीं होता, यदि मनुष्य मरता नहीं तो राक्षस बन जाता। बुढ़ापा संकेत देता है कि रे मानव! तूने विषयों में अपना जीवन गंवा दिया, अब इस शरीर को छोड़ने का समय आ रहा है। अभी भी सावचेत हो जा। तू अपने प्रियतम को दिल में बसा ले। ये शरीर जर जर हो जाता है, जब काम का नहीं रहता तो मौत आलिंगन करती है कि इस शरीर के बदले तुझे नया शरीर दे दिया जाएगा क्योंकि इस शरीर से तूने परमात्मा की प्राप्ति का लक्ष्य खो दिया। अब ये बुढ़ापा जो तुम्हें दिया गया है, बुढ़ापा संकेत दे रहा था, ये तो एक चेतावनी थी। आप सोए हुए हैं, सात बजे नहीं उठे, फिर आठ बज जाते हैं, नौ बज जाते हैं दस बज जाते हैं, घर में सब लोग शोर करने लगते है तो मन में क्या होता है कि मुझे चेतावनी दी जा रही है कि अब दोपहर होने वाला है, मुझे अब उठ जाना चाहिए। फिर कदाचित तब भी नहीं उठते हैं, शाम को अंधेरा आने लगेगा तो सब लोग खीज जाएगें कि पूरी रात सोए हो, पूरे दिन सोए हो, अब अति कर दी है। उसी तरह से पहले हमारे बाल सफेद होते हैं, शरीर कमजोर होने लगता है। ये संकेत दिया जा रहा है, अब तुम्हारे शरीर की उम्र बीती जा रही है। सब के घरों में आज कल प्रचलन हो गया है जन्मदिन मनाने का। किसका जन्मदिन? जन्मदिन तो शरीर का मनाया जाता है। आप के जीव का जन्म किस दिन हुआ था? कोई बता सकता है। आत्मा की जन्मतिथि क्या है ? शरीर तो नश्वर है। यदि हम साठ साल का जन्मदिन अपना मना रहे हैं, खुश हो रहे हैं कि आज हमारी उम्र के साठ साल हो गए लेकिन ये तो पता नहीं कि उम्र के साठ साल बीत गए। अब थोड़ा सा समय और बचा है।

'तेरी गिनती बांधी स्वांसों स्वांस, तिनको भी नाहीं विश्वास।'

लेकिन जब मौत का समय नजदीक आता है तो प्राणी घबरा जाता है कि मुझे मरना पड़ेगा। मृत्यु अवश्य भारी है, लेकिन

जिसने युवावस्था में इसको समझ लिया कि मुझे मरना होगा, मुझे बुढ़ापा भी देखना होगा और मेरे शरीर को रोग भी लगेगा, वो पहले से ही सावधान हो जाएगा और जब तक शरीर रहेगा, सारे दुख द्वन्द्वों से परे रहेगा। दुख किसको कहते हैं और सुख किसको कहते हैं ? हमारे मन को जो अच्छा लगता है, वो सुख है और जो मन को अच्छा नहीं लगता, वो दुख है। मछली को पानी से निकाल दीजिए, तो वो उसके लिए दुख है। हमको पानी में डुबो दीजिए, तो वो हमारे लिए दुख है। यदि हमारा सम्मान होता है, तो बहुत अच्छा लगता है। यदि अपमान होता है तो बहुत बुरा लगता है। लेकिन एक योगी के लिए अपमान अमृत है और सम्मान विष। सम्मान में मनुष्य उस मोह के जाल में बंध जाता है। अपमान होने पर वह चिंतन करता है कि मेरा अपमान क्यों हुआ ? मेरे में क्या कमी है ? दुख होता है तो लगता है कि संसार दुखमयी है। मेरी आत्मा का प्रियतम तो कहीं और होगा। गौतम बुद्ध घर–द्वार क्यों छोड़े ? उन्होंने देखा कि एक तो बुढ़ापा भी सब को घेर लेगा, मौत सबको आ जानी है, तो मैं ये राज पाट लेकर क्या करूंगा ? यदि मुझे मरना ही पड़ेगा, मुझे बूढ़ा ही होना पड़ेगा, तो मैं उस शाश्वत शांति की तरफ क्यों न चलूं जिसको पाने के बाद जन्म मृत्यु और बुढ़ापे के कष्ट से मैं रहित हो जाऊं। जानवर भी बूढ़े होते हैं, जानवर भी मरते हैं, जानवर भी रोगी होते हैं लेकिन उनके पास बुद्धि नहीं होती। हमको ज्ञान चक्षु दिया जाता है। ब्रह्मवाणी हमें इसलिए दी गई है, संसार का मूल्यांकन करने के लिए। तारतम वाणी इसलिए आई है कि हम खुद को जाने, अपनी आत्मा के प्रियतम को जानें और हमारा निजघर कहां है, उसको जानें। महामति जी कह रहे हैं 'दुख रे प्यारो मेरे प्रान को', सो मैं छोड़यो क्यों कर जाए।' मैं दुख को क्यों छोडूं ? हम सुख को छोड़ना नहीं चाहते। महामति जी दुख को छोड़ना नहीं चाहतीं।

दोनों के व्यवहार में अंतर है। जो आत्मज्ञानी होगा, जो ब्रह्मज्ञानी होगा, वो संसार के सुखों को विष के समान समझेगा और जो माया में आसक्त होगा, वो माया के सुखों को सब कुछ समझेगा। जनक राज सिंहासन पर बैठे रहतें हैं, लेकिन उनको राज सिंहासन से कोई मोह नहीं है। भृतृहरि ने अपने वैराग्य शतक में लिखा है, कि रे मन! इन बड़े–बड़े राजाओं से तू क्यों मिलने की इच्छा करता है ? जिनसे मिलने के लिए जाने पर उनके सेवक कहते हैं कि महाराजा अभी विश्राम कर रहे हैं। तू सर्वशक्ति मान उस परमात्मा से क्यों नहीं मिलना चाहता जिनको तू अपने दिल में स्वयं देख सकता है। जिसके पास जाने से कोई रोकने वाला नहीं है और मैं जब राजा था, तो मैं अच्छे–अच्छे व्यंजन खाता था, अब तो भिक्षा में मिले हुए सत्तू से ही मुझे लगता है कि सारा आनंद मेरे पास है। भृतृहरि जब सन्यास लिए होगें, गुफा में चले गए होगें, तो उनके पास क्या होगा ? हाथ में भिक्षा पात्र और शरीर ढकने के लिए थोड़ा सा कपड़ा। गौतम बुद्ध जब 6 सालों की साधना के बाद उठे थे, शरीर पर कोई कपड़ा नहीं रह गया था, शरीर के जितने वस्त्र थे, सब जर–जर हो चुके थे। हम तो कितने कपड़े पहने होते हैं, फिर भी संतोष नहीं। लेकिन जब गौतम बुद्ध बुद्धत्व प्राप्त करके उठे, तो लगता था कि सारे ब्रह्मांड का सुख उनके पैरों के नीचे है। अज्ञान कहां है ? मोह में ही अज्ञान है। अज्ञान में ही दुख है। दुख में ही तृष्णा हमें सताती रहती है कि हमें ये मिल जाए, ये मिल जाये। सब कुछ मिल जाएगा, फिर भी शांति नहीं मिल सकती। शांति का सागर केवल एक मात्र पारब्रह्म होता है। और धाम धनी सुंदरसाथ को परमधाम की तरफ मोड़ना चाहते है, इसीलिए बार–बार कह रहे हैं कि 'सो मैं छोड़यो क्यों कर जाए' कि मैं दुखों को छोड़ नहीं सकता। आप को दुख हो जाएगा, तो आप कहेगें कि कोई रास्ता बताइए कि ये दुख चला

जाए। अब सुंदरसाथ जिद करते हैं तो हमें भी कहना पड़ता है कि मेहेर सागर का पाठ करा लीजिए, वाणी का पाठ करा दीजिए लेकिन एक जागृत आत्मा कभी नहीं कहेगी कि ये दुख हमसे चला जाए। क्या उसको दिख नहीं रहा है ? रामकृष्ण परमहंस को कैंसर हो गया था। सबने कहना शुरू किया कि गुरूदेव! आप चाहें तो आपकी इच्छा मात्र से कैंसर ठीक हो जाता है। आप दूसरों के कैंसर ठीक कर देते हो, अपना क्यों नहीं करते ? रामकृष्ण परमहंस का उत्तर था, कि जो मेरी माता है, यानि परमात्मा को वो मां कहकर संबोधित करते थे, क्या उस परमात्मा को दिखता नहीं है कि रामकृष्ण को कैंसर हुआ है। उनको मौज होगी तो ठीक करेगें, नहीं मौज होगी तो मेरे को कैंसर थोड़ा ही हुआ है, मेरे शरीर को हुआ है, होने दो। जितने दिन तक शरीर को रखना होगा, रखें, नहीं रखना, नही रखें। मैं नहीं कहने जाऊंगा कि ये कैंसर ठीक करो। क्योंकि उनको लगता है कि मेरा प्रेम कलंकित क्यों हो ? मैं इस शरीर के लिए क्यों मांगू ? जो मेरी आत्मा है, वो अपने परमात्मा से प्रेम करती है। रामकृष्ण का सिद्धांत यही है। हम राजजी को सांसारिक धरातल पर देखते हैं कि यदि कष्ट मिल गया, तो राजजी से ईमान टूट गया, यदि कष्ट नहीं मिला, तो राजजी बहुत अच्छे लगते हैं। ये तो दुनियां का रिश्ता हो गया। परिवार में पिता ने अपने पुत्र को अच्छी जायदाद दे दी, तो पिता अच्छा लगा। नहीं दी, तो बच्चे कटु शब्दों से संबोधित करते हैं अपने पिता को। सब कुछ भूल जाते हैं, रिश्ते नाते कि इस पिता ने कभी हमें जन्म दिया है, कभी पालन पोषण किया है। हमारा रिश्ता भी राजजी से वैसे ही हो जाता है। आप देखते ही हैं, मातायें बहने बैठी हैं। उनके पतिदेव जब उनकी इंछित वस्तु लाकर नहीं देते हैं, तो घर में महाभारत शुरू हो जाता है। और जब लाकर दे देते हैं तो पति बहुत प्यारा लगने लगता है। क्या

राजजी को भी हम इतने छोटे धरातल पर देखते हैं ? वो आनंद का सागर है, वो प्रेम का सागर है, जो करेगा ठीक करेगा। हमें अपने विचारों में दृढ़ता लानी होगी और यदि दुख मिला है तो उस दुख को एक उपहार समझना चाहिए कि जो हमें फूल की पंखुड़ी के मारने से भी कष्ट में देख नहीं सकता, वो किसी भी स्थिति में हमको दुख नहीं दे सकता। जो आस्था सीता ने राम के प्रति रखी थी, जो आस्था सावित्री ने सत्यवान के प्रति रखी थी, हम उससे भी गए गुजरे हो चुके हैं क्योंकि माया ने हमको ज्यादा डरा दिया है। महामति जी कह रहे हैं कि 'सो मैं छोड़यो क्यों कर जाए, जो मैं लियो है बुलाए'। मैंने तो खुद कहा है कि हे धाम धनी। मुझे दुख दो। एक बार श्री कृष्ण जी बहुत रीझ गए द्रौपदी पर। द्रौपदी और श्रीकृष्ण और अर्जुन, तीनों में बहुत गहरा आत्मिक स्नेह था। अर्जुन के निवास का जो कक्ष था, उस निवास कक्ष में द्रौपदी और अर्जुन के सिवा किसी भी चौथे व्यक्ति को इजाजत नहीं थी शयन की। यानि अर्जुन का एक मात्र बेटा अभिमन्यु भी उस कमरे में सो नहीं सकता था। युधिष्ठिर को भी उस कमरे में रहने की इजाजत नहीं थी जिस कमरे में अर्जुन रहते थे, जिस कमरे में श्री कृष्ण रहते थे और जिस कमरे में द्रौपदी रहती थी। ये पवित्र आत्मिक प्रेम था तीनों में। और ये तीनों जब भी शयन किए होगें, तो एक साथ ही शयन करते थे। द्रौपदी से पूछा कृष्ण ने, बोलो द्रौपदी, तुम्हारी क्या इच्छा है? द्रौपदी कहती है कि भगवान! यदि आप खुश हो, तो आप ये वर दे दीजिए कि मेरे दुखों का कभी भी अंत न हो। भीम वहीं खड़े थे। भीम बरस पड़े, कि पहली बार तो हम बारह वर्ष का वनवास और एक साल का अज्ञातवास भोग कर के सारे वंश को नाश कराने के पश्चात् हमें ये थोड़े समय के लिए सिंहासन मिला और तूने फिर दुख मांग लिया। द्रौपदी कहती है, कि भीम! आपको मालूम नहीं है, ये दुख ही तो हमें कृष्ण से

जोड़े रखता है। जिस दिन ये दुख चला जाएगा, उस दिन हमारे और कृष्ण के बीच का संबंध भी समाप्त हो जाएगा। ये मानव मन है। एक कमजोर प्राणी तृष्णाओं के जाल में फंसा होता हैं। उसके पास इतना विवेक नहीं होता। भाई–भाई में रिश्ते टूट जाते हैं। पिता पुत्र में रिश्ते टूट जाते हैं। गुरू–शिष्य में रिश्ते टूट जाते हैं। किसलिए ? जब स्वार्थों की पूर्ति में बाधा पड़ती है तो ये माया के रिश्ते अपने आप तार–तार हो जाया करते हैं। हर व्यक्ति आत्म ज्ञानी नहीं होता। हर व्यक्ति विवेकवान नहीं होता। महामति जी कह रहे हैं कि मैंने तो इन दुखों को जान बूझ कर के बुला कर लिया है। क्योंकि यही दुख है जो मुझे धनी तक ले जाएगा।

आप चाहते है कि माया के सुखों में हंसते भी रहें और राजजी को पा लें, तो ये संभव नहीं है। हां, मिल भी सकते हैं। यदि आपने संतुलन बनाए रखा। संतुलन बनाने का मतलब ? यदि आप परिवार के साथ बाइस घंटे दे सकते हैं, तो दो घंटे राजजी के लिए देने पड़ेगें। एक घंटा वाणी के चिंतन के लिए और एक घंटा युगल स्वरूप को अपने दिल में बसाने के लिए। आप का कोई सगा संबंधी कहीं जाता है तो फोन पर कितनी देर बाते करते हैं, पहुंच गए हो कि नहीं पहुंचे हो, कैसे हो ? क्या हमारे पास इतना भी समय नहीं रहता कि पांच मिनट के लिए सबको भुला कर के उसको अपने दिल में बसा लें। यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो निश्चित रूप से आपको माया में दुख दिखाया जाएगा। संसार की ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो आपको दुखी होने से रोक सके। लेकिन यदि आप पहले से संतुलन बनाए रखते हैं, परिवार के उत्तरदायित्वों को पूरा करते हैं, समाज के उत्तरदायित्वों को पूरा करते हैं, ये तो आपके जीव का उत्तरदायित्व है। आत्मा का उत्तरदायित्व है अपने प्रीतम को पल–पल रिझाना।

'निसदिन ग्रहिए प्रेम सों, श्री जुगल स्वरूप के चरन।
निर्मल होना याही सों, और धाम बरनन।।'
निस दिन का मतलब क्या होता है ? ऐसा कोई भी दिन न जाए जिस दिन हमने अपने धाम हृदय में अपने प्राणवल्लभ को बसाया न हो।
'इन विध नरक से छूटिए, और उपाय कोई नाहें।'
आपको कोई भी मेहेर सागर का पाठ नहीं छुड़ा सकता। ग्यारह सौ रूपये दे करके मंदिर में पाठ करा देंगे, थोड़े समय के लिए दुख छूटेगा जरूर क्योंकि राजजी से आपके जीव ने प्रार्थना की है, फिर दुख पीछे लग जाएगा। लेकिन यदि आपके दिल में प्रेम है। सोने से पहले, सवेरे उठकर आप पहला काम कीजिए राजजी को दिल में बसाने का। जो जीवन में उठने के बाद पहला काम राजजी को दिल में बसाने का करता है, माया चरणों में हाथ जोड़ कर के खड़ी रहती है कि हमें शरण दो। यदि राजजी को आप दिल में नहीं बसाते हैं तो माया तलवार लेकर आपका पीछा करती रहेगी। दुखों से कोई भी छुड़ा नहीं सकता। पांडवों के ऊपर कृष्ण का वरद हस्त था, लेकिन फिर भी पांडवों को 12 वर्ष का वनवास झेलना पड़ा। मर्यादा पुरूषोतम राम को भी कष्ट झेलना पड़ा। सृष्टि में जो भी आया है, उसको कष्ट झेलना पड़ा है। सबसे बड़ी बात, हकी सूरत के साथ पांच हजार की जमात रही। रास्ते में सुंदरसाथ को भी कष्ट झेलने पड़े। वो तो सुंदरसाथ को दिखाया जा रहा था। और जो मस्त हो गया है, राजजी के प्रेम में, उसके लिए तो सब कुछ एक स्वप्न जैसा है। जैसे, आप टी.वी. पर कोई पिक्चर देख रहे हैं, उसके दृश्य बदल रहे हैं। कभी कोई हंस रहा है, कभी रो रहा है। एक ही व्यक्ति हंसते रोते दिखाई देता है। उसी तरह से जीवन में स्थितियां बदलती रहती हैं। दिन के बाद रात्रि, रात्रि के बाद दिन, ये चक्र चलता रहता है। इसको

दृष्टा हो कर के देखना है। इसमें मोहित नहीं होना है। यही ज्ञान कहता है। हमारी एक इच्छा पूरी होगी। दूसरी इच्छा फिर पीछे चलेगी, फिर उसको पूरी करेगें, तीसरी पीछे लग जाएगी। इन तृष्णाओं की कोई सीमा नहीं है। इसलिए प्रेम के सागर, आनंद के सागर उस प्राणवल्लभ को अपने दिल में प्रतिदिन बसाइये। जब तक उसके प्रेम में डूबे रहेगें, लगेगा मेरा अक्षरातीत कितना सर्वशक्तिमान है, वो कितना प्रेम करता है। किसी का रिश्ता किसी से टूट जाए, जैसे पति–पत्नी हो, तलाक हो जाए, कितना दुखी होते हैं। कदाचित दोनों के अंदर अध्यात्म की ज्योति जल रही हो और दोनों सब को भूल कर के उस प्रियतम को दिल में बसा लें तो क्या लगेगा ? सबसे प्रेम करने वाला प्रेम का सागर तो मेरे दिल में बसा है, मैं क्यों दुखी हूं! उसका जो धाम है, हमारे सूर्य जैसे अनंत सूर्यों, अरबों खरबों में भी अनंत अरबों खरबों से गुणा किया जाए, उससे भी ज्यादा तेजोमयी है। वो हमारा घर है। माया तो हमारा घर है नहीं। किसी को फूटी झोपड़ी में रख दिया जाए, तो उसको बहुत बुरा लगेगा। यहां के महलों के लिए क्यों दुखी होते हैं ? आप का महल तो कोई अनंत सौंदर्य वाला है। आप का प्रीतम तो अनंत प्रेम वाला है, शक्तिवाला है। उसको पाकर भी आप दुखी क्यों होते हैं ? दुखी तो वो हो जिस को ये पता नहीं चल पाया हो कि अक्षरातीत कौन है और हमारा समाज सब कुछ पा कर के भी कंगाल इसलिए बना रहता है क्योंकि उसको कुछ मालूम ही नहीं है कि तू है कौन। हम संसार की दृष्टि से अपने को देखते हैं, इसलिए स्वभाविक है कि दुख हमारा पीछा नहीं छोड़ता। तृष्णाएं हमारा पीछा नहीं छोड़तीं। ब्रह्मवाणी का प्रकाश हमारी आत्मा को जागृत करने के लिए है। ये ज्ञान हमें संकेत कर रहा है रे आत्मा! तू अपने धाम हृदय में बैठे हुए अपने प्रीतम को निहार, जो तुझे पल–पल ज्ञान दे रहा है, जो तुझे पल–पल प्रेम दे रहा है और तुझे आनंद के सागर में डुबो रहा है।

'इन झूठी जिमी में केहेत हों, सांच झूठ हैं दोए। B
जब आगूं अर्स के देखिए, तब इनमें न सांचा कोए।।

'अर्स हमेसा कायम'

अक्षरातीत धाम धनी अपना सिनगार वर्णन करने से पहले इस संसार की विशेषता बता रहे हैं कि हम जिस झूठी दुनिया में रह रहे है, वो कहने के लिए है। शरीर कुछ समय के बाद नष्ट हो जाता है, तो हम कहते हैं कि शरीर नश्वर है, शरीर झूठा है। करोड़ों सालों से सूर्य का अस्तित्व है, तो हम कहते हैं कि जब सृष्टि पैदा हुई थी, तभी से सूर्य है। यानि सूर्य को हम सच्चा समझते हैं। वास्तविकता यह है कि न सूर्य सच्चा है, न यह शरीर सच्चा है। इस संसार में कुछ भी वस्तु सच्ची नहीं है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में कहा गया है कि शरीर नश्वर है लेकिन इसके अंदर की जो चेतना है वो अविनाशी है। सत्य क्या है ? वाणी कहती है, 'जब आगूं अर्स के देखिए, तब इनमें न सांचा कोए।' जब हम परमधाम की दृष्टि से देखते हैं तो कोई भी सत्य वस्तु इसमें नहीं हैं, कालमाया के ब्रह्मांड में सत्य नाम की कोई वस्तु नहीं, क्योंकि ये जो हमारा जीव है, ये आदि नारायण की चेतना का प्रतिभास है और इस जीव का अस्तित्व तभी तक है जब तक आदि नारायण है। जैसे इस हाल के अंदर मैं खड़ा हो जांऊ और इस हाल में सौ दर्पण रख दिए जाएं, सभी दर्पणों में मेरा प्रतिबिम्ब दिखेगा। जैसे ही मैं हाल से बाहर निकलूंगा, दर्पणों में कुछ नहीं बचेगा। उसी तरह से ऋषि, मुनि, देवी, देवता, तीर्थंकर, अवतार जितने प्राणी इस सृष्टि में दिखाई दे रहे हैं सभी का अस्तित्व तभी तक है जब तक आदि नारायण की चेतना लीला कर रही है और आदि नारायण का स्वरूप तभी तक है जब तक अक्षर का मन सपना देख रहा है। जैसे ही अक्षर का सपना समाप्त होगा आदि नारायण का स्वरूप अपने मूल स्वरूप को प्राप्त कर लेगा और यहां कुछ बचने वाला नहीं

है। इसलिए इसको कहा जाता है कि जब परमधाम के समकक्ष देखते हैं तो लगता है कि इस संसार में कुछ भी सत्य नहीं है। लेकिन इस झूठ के अंदर धाम धनी ने अनहोनी को होनी कर दिया जो परमधाम में भी कभी नहीं कर सके थे, ब्रज में भी नहीं कर सके थे, रास में भी नहीं कर सके थे, वो इस जागनी ब्रह्मांड में कर दिया। क्या ? लीला किसमें होती है, हकीकत में। दो हैं तो लीला है। सागर है और उसकी लहरें उमड़ रही हैं। यदि लहरों का उमड़ना बंद हो जाए तो सागर की क्रीडा भी बंद हो जाएगी। चंद्रमा से किरणों को हटा दिया जाए तो चांदनी उसकी नहीं फैल सकेगी। चंद्रमा जो शीतल, मनोहर और सुंदर चांदनी फैलाता है, किरणों के माध्यम से फैलाता है। सूर्य का प्रकाश फैलता है, किरणों के माध्यम से। फूल की सुगंध फैलती है तो इसमें भी कुछ रहस्य होता है। फूल से सुगंध हमेशा जुड़ी होती है। सौंदर्य से शोभा जुड़ी होती है। यश से महिमा जुड़ी होती है। उसी प्रकार मारफत से हकीकत का प्रकटीकरण होता है। लेकिन हकीकत में जो रहतें हैं वो मारफत को हम जान नहीं पाए थे आज दिन तक। सखियां परमधाम में राजजी और श्यामाजी दोनों को रिझाती हैं। श्यामाजी सखियों को रिझाती हैं, राजजी को रिझाती हैं। और राजजी, श्यामाजी और सखियों दोनों को रिझाते हैं। सभी एक दूसरे को रिझा रहे हैं क्योंकि सभी अपने से दूसरे को करोड़ों गुना प्रेम करते हैं। इस संसार में ये संभव नहीं है। इस संसार में हर कोई अपने से प्रेम करता है। कोई किसी से रिश्ता रखेगा तो पहले सोचेगा कि इनसे रिश्ता रखने में हमारा लाभ क्या है, हानि क्या है। पति–पत्नी का रिश्ता हो, भाई–भाई का रिश्ता हो, पिता–पुत्र का रिश्ता हो, गुरू–शिष्य का रिश्ता हो, जब लाभ नहीं दिखेगा, संभव है उस रिश्ते में खटास आ जाती है। एक थाली में खाने वाले भाई, एक पलंग पर सोने वाले भाई, आपस में बैरी बन जाते हैं। पिता पुत्र

में तनाव, गुरू शिष्य में तनाव क्योंकि इस संसार के रिश्ते में पहली प्राथमिकता होती है, स्वयं का अस्तित्व। परमधाम में ऐसा नहीं है। परमधाम में हर कोई दूसरे से अनंत गुना प्रेम करता है। राजजी सखियों को रिझाने के लिए पशु पक्षियों का रूप धारण किए रहते हैं चौबीस घंटे। खूब खुशालियों के रूप में कौन है ? स्वयं श्री राजजी। राजजी ही खूब खुशालियों के रूप में सखियों को रिझाते हैं, पुतलियों के रूप में रिझाते हैं। राजजी का दिल ही 25 पक्षों के रूप में है, जिसमें सखियां क्रीड़ा करती हैं। सखियां सोचती हैं कि ये तो राजजी श्यामाजी सिंहासन पर बैठे रहते हैं। हम चौबीस घंटे इनको रिझाती हैं, ये हमारे लिए क्या करते हैं ? श्यामाजी के मन में है कि मैं सखियों से भी प्रेम करती हूं, राजजी से भी प्रेम करती हूं, मैं इनको रिझा रही हूं।

'असल अर्स के बीच में, हक का नाम आसिक।'

ये सबसे बड़ी बात है कि परमधाम में किसी को सुध नहीं है। खूब खुशालियां क्या सोच रही हैं कि हम राजजी, श्यामाजी और सखियां सबको रिझाती हैं। पशु पक्षी क्या सोच रहे हैं कि हमारा काम है राजजी श्यामाजी और सखियों को रिझाना और सच क्या है कि एक अक्षरातीत ही सबको रिझा रहे हैं। अक्षरातीत के हृदय का प्रेम ही सभी रूपों में क्रीड़ा कर रहा है। ये भेद परमधाम में आज दिन तक किसी को नहीं मालूम था, न श्यामाजी को मालूम था, न सखियों को मालूम था। सृष्टि की कहानी ये है कि दो मित्रों में बहुत गहरी घनिष्टता हो सकती है, दो भाइयों में हो सकती है, गुरू शिष्य में हो सकती है। एक दूसरे पर जान भी दे सकते हैं लेकिन दिल नहीं दे सकते। दिल देना एक असंभव सी बात है और अक्षरातीत कब मिलते हैं, जब आप अपना दिल दे देते हैं। दिल देने का मतलब क्या ? आपके दिल में अपना कुछ नहीं है, केवल 'तू' रह जाए। इस मंजिल को पाने के लिए बड़ी–बड़ी योग साधनाएँ करनी पड़ती हैं फिर

भी एक प्रश्न खड़ा होता है कि 'मैं' हूं। जब ये हो जाए कि 'मैं' नहीं केवल 'तू' है, मेरा अस्तित्व भी तुमसे है, खिलवत के प्रारंभिक प्रकरणों में इसी बात को अच्छी तरह से दर्शाया गया है।

'मैं बिन मैं मरे नहीं, मैं सों मारना मैं।'

जब तक परात्म की भावना नहीं आएगी तब तक किसी भी ब्रह्मात्मा के अंदर इस संसार की 'मैं' जो बैठी है, वो नहीं जा सकती। योगी को योग साधना का अहम्, तपस्वी को तपस्या का अहम्, ज्ञानी को ज्ञान का अहम्, बुद्धिमान को अपनी विद्वता का अहम्, धनवान को धन का अहम्, रूपवान को रूप का अहम्, प्रतिष्ठित व्यक्ति को अपनी प्रतिष्ठा का अहम् कहीं न कहीं सबको खाए जाता है। लेकिन केवल एक अक्षरातीत है, इसका एहसास कब होगा ? जब हमने परात्म की मैं ले ली, परात्म की भावना कर ली तो लगेगा कि ये तो सब कुछ झूठा है और केवल पसारा है तो उसी अक्षरातीत का पसारा है।

जब से महामति जी के धाम हृदय से तारतम का तारतम उतरा, खिलवत, परिकरमा, सागर, सिनगार, ये चारों किताबें तारतम का तारतम हैं। ये बताने के लिए राजजी ने यह खेल बनाया। हमको मोटे तौर से कह दिया जाता है कि कुंज वन की रेती में सखियां खेल रही थीं, राजजी आगे–आगे भागे जा रहे थे, इंद्रावती ने पल्ला पकड़ कर खींच दिया, सब उन के ऊपर गिर पड़ी तो राजजी ने मन में ले लिया कि इनको मेरी साहेबी का पता नहीं है, मेरे स्वामित्व और गरिमा का पता नहीं है। इसलिए इनको बताऊं कि मेरी महिमा क्या है। अपनी महिमा बताना तो बहुत छोटी बात है। आशिक अपनी महिमा क्या बताएगा, वो तो ये बताएगा कि तुम्हीं मेरे दिल के स्वरूप हो और तुम्हारे रूप में मैं ही क्रीड़ा कर रहा हूं। तुम्हारे रूप में क्रीड़ा करने का मतलब ? तुम्हारा रोम–रोम मेरा है और मेरे रोम–रोम में तुम समाए हो,

ये है प्रेम की पराकाष्ठा। जैसे एक सैनिक है, अपने सेनापति के आदेश पर सीमा पर लड़ते हुए अपने प्राण दे सकता है, सेवक अपने स्वामी की रक्षा में अपना सब कुछ कुरबान कर सकता है, जान भी दे सकता है लेकिन दिल नहीं दे सकता। आप अपने भाई को, मित्र को अपनी सारी संपत्ति लुटा सकते हैं लेकिन दिल नहीं लुटा सकते और अपने दिल में अपने अस्तित्व को मिटा कर किसी और को नहीं बिठा सकते। जिस दिन आप ऐसा कर लेंगें उस दिन कोई ऐसी शक्ति नहीं जो आपको परमहंस अवस्था में पहुंचने से रोक दे और ये ही नहीं हो पाता है। बड़े से बड़े विद्वान, बड़े से बड़े योगी, बड़े से बड़े तपस्वी, बड़े से बड़े भक्त के लिए ये कठिन होता है कि अपना दिल पूर्ण रूप से राजजी को दे दें। न जाने कितने जन्मों की कठोर साधना के पश्चात् धामधनी की कृपा से ये अवस्था आती है और जो इस अवस्था में पहुंच जाएगा उसको मारफत में जाने से कोई रोक नहीं सकता।

'मारफत हुई हाथ हक के, क्यों ले सकिए सोए।
ए दोस्ती तब होवहीं, जब होए प्यार बराबर दोए।।'

दोनों तरफ से प्रेम होगा, तब मारफत की अवस्था प्राप्त होगी। धाम धनी ने इस मारफत को बताने के लिए ये खेल दिल में लिया। 'मेहेर का दरिया जब दिल में लिया तब रूहों के दिल में खेल देखने का ख्याल उपजा।' मेहेर का दरिया दिल में लेने का मतलब ? राजजी ने ये मन में ले लिया कि इन सखियों को मैं अब तक हकीकत में डुबोए रखता हूं। हकीकत में डुबोने का मतलब ? मैं इनका धाम धनी हूं और ये अंगनाएं हैं मेरी, बस इनको इतना मालूम है। अब मैं इनको ये बता दूं कि मेरा ही दिल तुम्हारे रूप में लीला कर रहा है। हमारे और तुम्हारे बीच में कोई विभाजक रेखा नहीं है। बर्फ है जमा हुआ, वो है घणीभूत, वो है मारफत और वही बर्फ पानी के रूप में बहने लगा, वो है

हकीकत। पानी को आप बर्फ नहीं कह सकते। आप तालाब में जाइए, मई जून के महीने में। खौलता हुआ जो पानी हो, आप किसी से कह दीजिए कि देखो, ये बर्फ पड़ी है, तो क्या कहेगा कि ये पागल है। बर्फ थोड़ा ही है, ये तो खौलता हुआ पानी है। खौलते हुए पानी को आप बर्फ की उपमा नहीं दे सकते। दोनों एक है। लेकिन एक बह रहा है और एक जमा हुआ है। प्रेम, सौंदर्य, एकत्व यानि वहदत, निसबत, आनंद जब जमा हुआ हो, उसको कहते हैं मारफत। घणीभूत यानि जमा हुआ और जमा हुआ रूप जब द्रवीभूत हो जाए, बहने लगे, लीला रूप में दिखाई देने लगे, तभी प्रेम प्रकट होता है, सौंदर्य प्रकट होता है, क्रीड़ा प्रकट होती है। सखियों के रूप में क्या है ? सखियों के रूप में अपार प्रेम, अपार सौंदर्य, अपार कांति, अपार आनंद क्रीड़ा कर रहा है। तभी तो अक्षरातीत को ब्रह्मानंद का स्वरूप कहते हैं। यदि लीला ही न हो तो उनको ब्रह्मानंद कैसे कहा जा सकता है। मौसमी बहुत मीठी है लेकिन जिह्वा पर चखे बिना हम कैसे कह सकते हैं कि मीठी है या खट्टी। स्वादिष्ट मिठाई को चखे बिना हम कैसे कह सकते हैं कि ये मीठी है। उसी तरह से अक्षरातीत आनंदमयी है तो कैसे आनंदमयी है ? क्या अकेले परमधाम के कोने मैं बैठा रहेगा तो आनंदमयी कहलाएगा। सारी दुनिया इस बात को जानना चाहती है कि सच्चिदानंद पारब्रह्म है तो कैसा है ? क्या वो चुपचाप बैठा रहता है मौनी बाबा होकर या केवल हुकम देता रहता है। यदि ऐसा करता है तो दोनों तरीकों से वो आनंद का स्वरूप नहीं हो सकता। सागर का जल शांत है तो उसको सागर कैसे कहेगें ? जब तक उसमें लहरें न उठें। जिस तरह से सागर में लहरें उठती हैं उसी तरह से अक्षरातीत के हृदय के प्रेम और आनंद के सागर में जो लहरें उठती हैं, उसको कहते हैं सखियां, उसको कहते हैं 25 पक्ष, उसको कहते हैं खूब खुशालियां और अष्ट प्रहर की

लीला। ये बताने के लिए कि सखियों ! तुम मेरे ही अभिन्न अंग स्वरूपा हो। तुम मेरे दिल में हो, मैं तुम्हारे दिल में हूं। हमारे और तुम्हारे बीच में किसी भी तरह की विभाजक रेखा नहीं है। ये है मारफत और अब तक सबने क्या समझा था ? केवल हकीकत। हम गाते हैं संध्या आरती में, जहां पूरन ब्रह्म बिन और न कोई, जहां सच्चिदानंद बिन और न कोई। जहां पूरन ब्रह्म अक्षरातीत के सिवा और कोई नहीं है, जहां सच्चिदानंद के सिवा कुछ नहीं है। जहां राजजी के सिवा कुछ है ही नहीं, तो श्यामाजी का अस्तित्व क्यों ? बारह हजार सखियों का अस्तित्व क्यों ? अनंत खूब खुशालियों का अस्तित्व क्यों ? यमुनाजी नदी की जरूरत क्या है वहां ? तरह–तरह के बड़े–बड़े वन हैं, झूले हैं, सुखपाल हैं, महानद है, आखिर इनकी क्या आवश्यकता है ? खूब खुशालियों की क्या जरूरत है ? ये लीला का प्रकटीकरन है जिससे हमारी आत्मा समझ जाए इस मायावी दुनियां में कि प्रेम और आनंद क्या है ? लेकिन जब सब कुछ समेट लिया जाए तो बस एक बच जाता है, वो है मारफत। ये बात परमधाम में मालूम नहीं क्योंकि ये ज्ञान से बताना पड़ेगा। परमधाम में सभी हकीकत की लीला में डूबे पड़े हैं। और हकीकत का विस्तार कितना है, ये कैसे कोई मापे ? कई बार मैंने चर्चा में दृष्टांत दिया है, नमक का ढेला यदि सागर की गहराई को मापने का प्रयास करेगा तो क्या होगा ? वह स्वयं उसमें विलीन हो जाएगा। हर सखी राजजी के दिल को परमधाम में कैसे माप सकती है क्योंकि परमधाम में तो अनंत है। राजजी के दिल में कितना प्रेम भरा है, कोई भी सखी परमधाम में माप नहीं सकती। परमधाम का विस्तार कितना है, यह मापा नहीं जा सकता। ये नहीं बताया जा सकता कि तुम मेरे ही तन हो और मेरा ही दिल हो। रब्द क्यों होता है? सभी एक दूसरे को रिझा रहे हैं और सभी सच बोल रहे हैं। परमधाम

में कोई भी झूठ नहीं बोल सकता। सखियों का कहना है कि धामधनी! हम आपको रिझाती हैं। बिलकुल सच। श्यामाजी का कहना है कि हम सबको रिझाती हैं। वो भी सच है। राजजी कहते हैं कि हम सबको रिझाते हैं, वो भी सच है। अपनी–अपनी जगह पर सभी सच बोल रहे हैं। लेकिन मूल बात ये है कि मारफत बताने के लिए ये खेल बना। मारफत यानि अपने दिल का भेद बताने के लिए। आशिक के अंदर जब प्रेम उमड़ता है तो अपना सारा दिल लुटा देता है और जब दिल लुटा देता है तो अपने दिल की कोई भी बात छिपाएगा नहीं। हमारे ऊपर जरा भी माया का कष्ट आता है तो हम चीखना चिल्लाना शुरू कर देते हैं कि राजजी आपको क्या सूझी थी हमको माया के संसार में भेजने की। यहां जिसको देखो वो दुखी। किसी को संतान नहीं, किसी को धन नहीं, किसी को बीमारी है, किसी को कोई बात, सौ उलाहने सब सुन्दरसाथ देते रहते हैं। ये नहीं मालूम, –

'सुख हक इस्क के, जिनको नहीं सुमार।
सो देखन की ठौर इत है, जो रूह सो करो विचार।।'

हम अपनी माया की बुद्धि से सोचते हैं कि राजजी ने बहुत गलत किया जो माया में हमें भेज दिया। ये स्थिति वैसी ही है, यदि कोई विद्यार्थी पढ़ रहा हो, जाड़े का मौसम है, पिताश्री उठाते हैं कि बेटे उठो, पढ़ो वो खीझता है। इतनी मीठी नींद आ रही थी, रजाई में मैं लेटा था। ये पिताश्री को और कोई काम नहीं सूझता, जब देखो तब उठा देते हैं। उस समय तो उसको बहुत बुरा लगता है। जैसे हम लोगों को बुरा लग रहा है जब माया में हमें कष्ट भोगना पड़ता है तब। लेकिन कदाचित वो बच्चा अपने पिता की आज्ञा मानता है और लगन से पढ़ता है, जाड़े की निद्रा को ठोकर मार देता है तो एक दिन बहुत बड़ा अधिकारी बनता है। उस समय उसको पता चलता है कि मैं जो

नादानी में पिता पर गुस्सा कर रहा था पढ़ने के लिए जब वो दबाव डालते थे। यदि मैं नहीं पढ़ा होता तो मैं चपरासी होता या मजदूर बना होता। आज इस पद पर नहीं पहुंचा होता। बातून ये है। जो माया में हमको दुख मिलता है, हम रोते हैं। ये भूल जाते हैं,

'जो साहेब सनकूल होवहीं, तो दुख आवे तिन।
इन दुनियां में चाह कर, दुख न लिया किन।।'

ये भी राजजी की बहुत बड़ी मेहेर होती है तो हमें दुख मिलता है क्योंकि इस दुनियां में जब दुख के पड़ाव आते हैं तब हम आत्म चिंतन करते हैं। हमने कितनी उम्र अपनी खो दी। आगे आने वाले समय में हमें क्या करना है।

'महामत कहे इन दुख को, मोल न कियो जाए।
लाख बेर सिर दीजिए, तो भी सरभर न आवे ताए।।'

एक दो बार नहीं, लाखों बार अपनी गर्दन काट कर के दे दी जाए, तो भी अक्षरातीत हमें जागृत करने के लिए जो माया में हमें दुख का झटका देते हैं, उसकी कीमत नहीं दी जा सकती। मेहेराज को दुख हुआ चारों तरफ से आरोप कि मेहेराज ने धन हड़प लिया है। हब्से में पहुंचा दिए गए और विरह में तड़प कर उन्होंने अपने धाम धनी को पुकारा। धाम धनी उनके धाम हृदय में साक्षात् बैठ गए। गए थे मेहेराज बनकर, लौटे तो प्राणनाथ बनकर। मेहेराज से प्राणनाथ किसने बनाया ? इस दुख ने बनाया। लालदास जी अरबोपति से कंगाल हो जाते हैं। लेकिन वो महामति बन कर के निकलते हैं। यदि लालदास कंगाल नहीं होते तो एक सेठ बने रह जाते माया के और उनको महामति का खिताब नहीं मिलता। श्री जी के सबसे अधिक दुलारे बनने का सौभाग्य उनको प्राप्त नहीं हो पाता। याद रखिए जो परमधाम में ये कहता है कि रूहों, तुम मेरे साक्षात तन हो, वो कैसे सहन कर सकता है कि आप दुखी हों।

'मुख करमाने मन के, सो तुमारे मैं ना सहूं।
ए दुख सुख को स्वाद देसी, तो भी दुख मैं ना देऊं।।'
माया में तुम्हारे मुख मुरझाते हैं दुख से। मैं तो यह भी सहन नहीं कर सकता कि तुम्हारे माया के मुख भी मुरझाए हो! लेकिन मजबूरी ये है कि यदि मैं तुम्हें दुख का एहसास न कराऊं तो दुखी दुनियां से तुम नाता ही नहीं तोड़ना चाहोगी। तुम मेरी तरफ मुड़ोगे ही नहीं और मेरे दिल में तुम्हारे लिए कितना प्रेम है, इसका एहसास तुमको नहीं हो पाएगा। तुम माया के मीठे झमेलों में फंसे रहोगे। पत्नी का प्यार, पति का प्यार, सगे संबंधियों का, सहेलियों का, मित्रों का प्यार। इसी बंधन में तुम फंसी रह जाओगी और ये भी रिश्ते थोड़े समय के लिए। जो मेरे हृदय में तुम्हारे लिए अखंड प्रेम का सागर लहरा रहा है, उसकी तुम्हें जरा भी झलक नहीं मिल पाएगी। अभी मैंने कहा अक्षरातीत ने अपने हृदय का प्रेम बताने के लिए ये माया का खेल बनाया। जिसको अक्षरातीत की पहचान हो जाएगी, वो कभी नहीं कहेगा कि राजजी आपने माया की झूठी दुनिया क्यों बनाई। क्योंकि इसमें तो उन्होंने अपना दिल खोल करके रख दिया जो परमधाम में नहीं कर सकते थे।
'स्याने दिवाने संग क्यों कर होवे'
परमधाम में कोई स्याना नहीं है। केवल प्रेम का रस है। और जो प्रेम में डूबा हो उसको आप बताने जाओ कि मेरे दिल में कितना प्रेम है, उसको क्या पता ? यहां प्रेम हमसे जुदा किया। परिणाम क्या हुआ ? इस माया के संसार में जब हमें प्रेम नहीं मिलता, वाणी पढ़ते हैं, चिंतन करते हैं, अपने जीव को विरह की भट्टी में तड़पाने का प्रयास करते हैं। इस इलम के द्वारा धाम धनी ने अपने दिल का सारा भेद बता दिया जो कभी भी बता नहीं सके थे। ये सिनगार की वाणी, सागर की वाणी में बताया जा रहा है। एक ही अक्षरातीत का दिल किस तरह से सब के रूप में लीला

कर रहा है। सिंधी वाणी क्या कहती है ?
'सेहेरग से नजीक, आड़ा पट न द्वार।'
जब प्रिया और प्रियतमा, पति और पत्नी, अंगना या धामधनी, कोई भी भाव लीजिए, का रिश्ता है, तब तक तो एक दीवार है। जैसे इन्द्रावती जी राजजी नहीं बन सकती और राजजी इन्द्रावती नहीं बन सकते क्योंकि लीला चल रही है। एक प्रेमी है और एक प्रियतमा है। विभाजक रेखा है, यह हकीकत है। जैसे चांदनी चंद्रमा नहीं बन सकती, किरणें सूर्य नहीं बन सकती, लहरें सागर नहीं बन सकती लेकिन ऐसी स्थिति आ जाए जब दोनों एक हो जाएं तो क्या रहेगा ? ये भेद समाप्त। उमड़ती हुई लहर तो पहचानी जा सकती है लेकिन जब लहर सागर में मिल जाएगी तब सागर हो जाएगी। वाहेदत का मतलब क्या ? 'अंतर पट खोल देखिये, दोऊ आवत एक नजर।'
हम अंदर की नजर से देखें तो दोनों एक स्वरूप है। यहां भी जब हम शरीयत की राह पर चल रहे होते हैं, तरीकत की राह पर चल रहे होते हैं, या ज्ञान की गहराई में पहुंच गए होते हैं, तो भी एक दूरी बनी हुई है। कि राजजी को हमने समय पर भोग नहीं लगाया तो हो सकता है राजजी मुझसे रूठ जाएगें। ये जीव डरा रहता है। मेरे कहने का मतलब ये नहीं कि आप बिलकुल लापरवाह हो जाइए। क्योंकि जीव तो मारफत में नहीं पहुंच सकता। ये आत्मा की वस्तु है। हमारी आत्मा इस मायावी जगत में जब ब्रह्मवाणी के तारतम ज्ञान को गहराई से समझ जाती है, जीव के विरह में डूबने के पश्चात् और धाम धनी की मेहेर की छांव तले हो जाती है तब वो इस मारफत के रहस्य को समझती है कि धामधनी ने हमारे ऊपर कितनी बड़ी मेहेर की है कि अब हमें हकीकत से मारफत में पहुंचा दिया। हां, पांचवी भूमिका की जो लीला होती है, वो मारफत की लीला होती है।

लेकिन उसको व्यक्त करने की क्षमता नहीं होती। क्योंकि वहां ज्ञान के द्वारा नहीं होती। प्रेम के द्वारा होती है। प्रेम में जो मारफत में डुबो दिया जाता है, वो समझ बुद्धि तक नहीं पहुंच पाती है। जैसे, एक पिता का एक लड़का था, बहुत लापरवाह। पिता ने सोचा कि मैं कैसे इसको आगे बढ़ाऊं। उसने कहा कि देखो, आज तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा। जाओ खुद कमा करके लाओ। पहले दिन उसने क्या किया। अपनी मां से मांग लिया, कहा कि ये लीजिए। पिता ने पूछा कहां से लाए ? कहा कि मां से। पिता ने कहा कि नहीं। सबको बुलाकर कह दिया कि न मां पैसा देगी, न कोई भाई तुम्हें पैसा देगा, न बहन पैसा देगी, न कोई अन्य सदस्य देगा। तुम जाओ बाजार में मजदूरी करो या कुछ करो। तुमें लाना है। कभी जीवन में काम नहीं किया था। लेकिन उस दिन उसने परिश्रम किया और लाकर के पिता श्री के हाथों में पैसा दिया। बस ये बात हमें समझने लायक है। पिता का कमाया हुआ मिल रहा था तो उसको पैसे की कीमत का एहसास नहीं था। जब खुद आठ घंटे काम किया तो पता चला कि इस पैसे की कीमत क्या है। परमधाम में अनंत प्रेम है और उस अनंत प्रेम में, अनंत वाहेदत में सखियों को ये पता ही नहीं चल पाया कि अक्षरातीत के हृदय में प्रेम और आनंद का कितना सागर लहरा रहा है। इस मायावी दुनियां में आने के बाद किसी के पास प्रेम नहीं। जीव हर कोई दुखी है। सबका जीव किसी न किसी कारण से दुखी है। किसी के पास पैसे की कमी है, किसी का शरीर रोगी है, किसी को समाज में बदनामी है, किसी की कोई समस्या है। सबसे पूछिए अकेले में कैसा चल रहा है, हर कोई अपना कोई न कोई रोना रो देगा। आत्मा जीव के ऊपर बैठ कर देख रही है कि मुझे तो प्रेम यहां दिखाई नहीं देता, आनंद दिखाई नहीं देता। वाणी पढ़ते हैं तो लगता है परमधाम में अनंत प्रेम है, अनंत आनंद है। अनंत एकत्व है। जब

हम धनी के प्रेम में डूबने के लिए कदम बढ़ाते हैं तो धामधनी की मेहेर से ये रहस्य समझ में आता है कि अक्षरातीत ने ज्ञान के द्वारा वो रहस्य बता दिया जो परमधाम में नहीं बता सके थे। नमक का ढेला जब समुद्र की गहराई को मापने का प्रयास करेगा तो क्या होगा ? डूब जाएगा, वो गल जाएगा उसी में। सखियां प्रेम में डूब कर भी प्रेम की मारफत को नहीं जान सकी थीं। निसबत में एक पल भी धनी से दूर नहीं होती थीं लेकिन निसबत की मारफत को नहीं जान पाती थी कि हमारा दिल और राजजी का दिल एक है। लहर की रचना भी तो वैसे ही होगी जैसे सागर की रचना है। अंतर यही है कि लहर में थोड़ा जल होता है और सागर में अथाह जल होता है। लेकिन लहर में जो जल क्रीड़ा कर रहा है वही जल तो अथाह सागर का ही है। सखियों के तनों में अथाह प्रेम है लेकिन वो प्रेम किसका है ये नहीं मालूम। सखियां समझती थी कि हमारा प्रेम है। सखियां अपने शरीर को मानती थी कि हमारा शरीर है। हम राजजी को रिझाती हैं और यही भूल है। परमधाम में राजजी के सिवा कुछ नहीं। मारफत में डूबने के बाद सखियां उस मारफत का आनंद तो लेती है लेकिन वो जिह्वा से प्रकट नहीं हो सकता था। आज ज्ञान के द्वारा हम जिह्वा से कह पा रहे हैं। हमारे जीव का हृदय भी जान गया है कि मारफत का रहस्य क्या है। आत्मा तो किसी की जब प्रेम में डूबेगी तब उसका अनुभव करेगी। परमधाम में जो मारफत की अवस्था आती है उस अवस्था में आने के लिए हमें प्रेम में डूबना पड़ेगा। हां, जब उस प्रेम में डूबेगें तो परमधाम की उस स्थिति का एहसास हो जाएगा लेकिन धाम धनी कहते हैं इश्क और इलम, ये दोनों हक की न्यामत हैं। इश्क वाहेदत में गर्क कर देता है और इलम लज्जत देता है, स्वाद। इस जागनी ब्रह्मांड में हमें वाणी के द्वारा स्वाद बताया जा रहा है कि मारफत का स्वरूप कैसा होता है।

परमधाम में डूबते थे लेकिन डूब करके उसका स्वाद नहीं बता सकते थे। अब ज्ञान के द्वारा हम उसका स्वाद बता रहे हैं। घंटों व्याख्यान करा लीजिए। एक से एक अच्छे विद्वान हैं जो मारफत के ऊपर बोल सकते हैं। पूछा जाएगा कि क्या आपको अनुभव हुआ ? कहेगें कि नहीं, ये तो प्रेम की बात है। दोनों में छत्तीस का आंकड़ा है। परमधाम में डुबो दिया जाता था लेकिन पुनः हम सावचेत हुए तो तुरंत हकीकत में। बोलने की सामर्थ्य नहीं। अब यहां धाम धनी ने अपना दिल खोल करके रख दिया है इसलिए यह जागनी ब्रह्मांड इतना महत्वपूर्ण है। हमें धाम धनी से किसी भी तरह के गिले शिकवे करने का अधिकार नहीं कि राजजी, आपने हमें माया की दुनियां में क्यों छोड़ दिया। आप माया के पशु–पक्षियों को देखिए। मुर्गी जब सोती है तो बच्चों को अपने पंखों के नीचे छिपा लेती है। पास ही रखेगी। गाय, जिस दिन बच्चे को जन्म देती है, उस दिन बच्चे को कोई छू दे, तो मारने दौड़ती है। पशु पक्षी अपने बच्चों से इतना मोह, लगाव रखते हैं तो क्या अक्षरातीत इतने निष्ठुर हो गए जो माया के ब्रह्मांड में आपको ठोकर मारकर भेज देगें और अपने परमधाम में आनंद में बैठे रहेगें। हमने तो अक्षरातीत के दिल को समझा ही नहीं है। हमने तो उनको संसारिक दृष्टि से देखा है इसलिए बार–बार गिले शिकवे करते हैं कि राजजी आपने माया में हमको क्यों भेज दिया ?

'अर्स कर बैठे दिल को, जुदे इत भी छोड़े ना।'

यहां भी राजजी अलग नहीं हैं। यदि हम अपनी अंदर की नजर खोल कर के देखें तो सबकी आत्मा के धामहृदय में बैठे हुए हैं लेकिन हमारे बीच में यह संसार आड़े आ रहा है। हमारी आत्मा जीव पर बैठकर जीव के शरीर को देख रही है, संसार की लीला को देख रही है। इधर से नजर हटा दीजिए, उधर कर लीजिए और उस शोभा में खो जाइए तो ये शरीर आपको

निरर्थक लगेगा, संसार निरर्थक लगेगा और आप मारफत की स्थिति अनायास ही प्राप्त कर सकते हैं। जागनी किसको कहते हैं ? अब तो हमें ज्ञान के द्वारा बताया जा रहा है कि ये संसार झूठा है। हम भी जानते हैं कि ये संसार झूठा है, माया दुख रूपी है। लेकिन इसको हमने कथनी का केवल विषय बना दिया है। चितवनि की गहराइयों में जाने के बाद जैसे–जैसे शोभा उतरती जाएगी, संसार से हमारा नाता टूटता जाता है। और हृदय में प्रेम का वही सागर विराजमान होता जाता है। जैसे–जैसे हम प्रेम करते जाते हैं, शरीर को भूलते जाते हैं, अंत में हकीकत को भी भूल जाते हैं तो इसी संसार में बैठे–बैठे हमें मारफत की भी अवस्था प्राप्त हो जाती है। हमें अपने अस्तित्व का कोई भान नहीं रहेगा, केवल एक रहेगा 'तू'। इसीलिए धाम धनी ने हमें एक ऐसे चौराहे पर खड़ा कर दिया है, जहां से हम परमधाम की मारफत को देख रहे हैं, संसार के द्वैत को देख रहे हैं, अखंड ब्रज को देख रहे हैं, अखंड रास को देख रहे हैं। जैसे कहा जाता है बोलचाल की भाषा में, दो मित्र होते हैं, दो पति पत्नी होते हैं, जीवन का लंबा समय गुजर गया होता है लेकिन किसी ने किसी को अपना दिल नहीं दिया होता है। लगाव हुआ रहता है, प्रेम हुआ रहता है। दिल नहीं दिया होता है। लेकिन जब दिल दे दिया जाता है, दोनों एक दूसरे को दिल दे देते हैं, शरीर दो रह जाते हैं, दिल एक रह जाता है, वो है मारफत की अवस्था और धाम धनी ने जागनी ब्रह्मांड में वो अवस्था हमें दे दी है। सबसे पूछिए आप क्या चाहते हैं ? क्या उत्तर मिलेगा – जल्दी से महाप्रलय हो जाए ताकि हम घर चलें। अच्छी बात है। महाप्रलय तो होगी, घर भी चलना होगा लेकिन जो काम आप को दिया गया है, आपने उसको कितना पूरा किया है ? आपके पास वाणी का ज्ञान है। सागर की चौपाइयां क्या कह रही हैं? सिनगार की वाणी तो आपको मारफत में ही खड़ा कर रही है।

सिंधी बार–बार पूछ रही है कि सुन्दरसाथ जी, आपने अब तक सागर, सिनगार से क्या सीखा ? जब हम वाणी पढ़ते हैं, चर्चा सुनते हैं, तो बहुत अच्छा लगता है।

'हादी मीठे सुकन हक के, कहेगा तुमें रोए रोए।
तुम भी सुन–सुन रोएसी, पर होस में न आवे कोए।।'

चर्चा सुनते हैं, सब के मन में भाव जागता है लेकिन घर जैसे ही जाते हैं, एक दूसरा माहोल खड़ा हो जाता है। कहने का तात्पर्य क्या है ? अक्षरातीत ने अपना दिल खोला, उसकी कीमत हम नहीं समझ पा रहे हैं। आदि नारायण को मालूम है इसकी कीमत क्या है लेकिन आदि नारायण को ये अधिकार नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु को ये अधिकार नहीं है। हम एक मित्र से कोई गोपनीय बातें करते हैं तो चाहते हैं कि कोई दूसरा न सुने। पति–पत्नी जब व्यक्तिगत बातें करते हैं तो चाहते हैं कि कोई दूसरा न सुने। उसी तरह से गुरू और शिष्य के बीच में अध्यात्म की कोई गहन बाते होती हैं तो सब सार्वजनिक नहीं की जातीं। लेकिन अक्षरातीत ने तो अपने हृदय की सारी बातें वाणी के रूप में सार्वजनिक कर दी हैं। किसके लिए? केवल हमको जगाने के लिए। फिर भी हम उससे लाभ नहीं ले पा रहे हैं, तो इसके गुनाहगार कौन है? हमारा यह कठोर हृदय जीव का जो धनी के दिल की सारी बातों को पढ़ता है, सुनता है, जानता भी है लेकिन इसको व्यवहार में नहीं ला पाता। एक संशय की नजर हमको घेरे रहती है। पता नहीं राजजी हमारे ऊपर मेहेर करेगें या नहीं। हमारी बात सुनेगें या नहीं। कहीं ऐसा तो नहीं कि राजजी हमसे प्रेम नहीं करते। ये संशय की लकीरें हमारे लिए बहुत बड़ी खाई हैं जिसमें हम स्वयं गिर रहे हैं। याद रखिए अक्षरातीत से ज्यादा निकट आपके कोई नहीं है, उससे ज्यादा प्रेम करने वाला कोई नहीं है और आपको जगाने के लिए उसने अपना दिल खोला है सागर और सिनगार के रूप में जो

परमधाम में अनंत काल से रहते हुए भी कभी नहीं खोला। अक्षरब्रह्म को यह सुख नहीं, नारायण को सुख नहीं तो इस दुनियां के ऋषि मुनियों को कैसे सुख प्राप्त हो सकता है कि वाहेदत क्या है, निसबत की मारफत क्या है, इश्क की मारफत क्या है और ये सब कुछ जानकर हम सुन्दरसाथ एक हतभाग्य के शिकार हो रहे हैं। सारी सृष्टि जिस ज्ञान के लिए तरसती रही थी लेकिन वो अवसर नहीं मिला। जागनी ब्रह्मांड की लीला के अंतिम चरण में आप सब सुंदरसाथ से यही आशा की जा सकती है कि सागर और सिनगार के, खिलवत, परिकरमा की, सिंधी की गहराइयों में हम डूबें। ज्ञान के द्वारा भी और प्रेम के द्वारा भी। अब शरीयत का कोई महत्व नहीं रह गया कि माला ले कर के राजश्यामा राजश्यामा का जप करें, परिकरमा लगाएं, भोग लगाएं, खाएं, पिएं, नाचें, कूदें। ये तो प्राइमरी क्लास की चीजें हैं। ये तो करने के लिए दुनिया बैठी है। और आज सारा समाज उसी में बहा जा रहा है। महामति जी की आतम कहती है,

'अरस हमेसा कायम, ए दुनी न तीनों काल।'

ये दुनियां कभी नहीं थी, आज भी नहीं है और भविष्य में भी नहीं रहेगी। जैसे सामने ये दीवार दिख रही है। इसके मोटे रूप को हम देख रहे हैं तो कहते हैं कि ये दीवार है। दीवार के एक छोटे से हिस्से में सूक्ष्मदर्शी से देखिए तो क्या लगेगा ? उसके सारे परमाणु, अणु कांपते हुए नजर आएगें। कोई भी चीज स्थिर नहीं दिखाई देगी। आप दूध पी रहे हैं, दही पी रहे हैं, कुछ अच्छी चीज खा रहे हैं। इन आंखों से देखेंगे तो लगेगा कि ये चीज है। वास्तव में वो चीज नहीं होती। उसके सारे अणु दूर दूर कंपन करते हुए दिखाई देगें। कहने के लिए सूरज है, चंद्रमा है, सितारे हैं, पृथ्वी है? घर–द्वार है। जो वस्तु पहले नहीं थी, वो वर्तमान में भी नहीं है और बाद में भी नहीं रहेगी। इसीलिए कहा

है कि ये तो स्वप्नवत संसार है। सत्य उसको कहते हैं जो अनादि काल से था, वर्तमान में है और अनंत काल तक रहे। जो अनादि है वो अनंत होता है और जो आदि होता है उसका अंत होता है। इस सृष्टि का रूप पल–पल परिवर्तित होता रहा है। सूरज है, उसका प्रकाश पल पल क्षीण होता जा रहा है। आप बचपन में कुछ और थे, जवानी में कुछ और हैं, बुढ़ापे में कुछ और हो जाएँगें। आप नया कपड़ा सिलवाते हैं, अगले दिन से वो पुराना शुरू हो गया। बच्चा जिस दिन से जन्म लेता है, उसी दिन से उसकी आयु क्षीण होनी शुरू हो जाती है। सारी सृष्टि काल के गाल में समाती हुई जा रही है। कोई वस्तु स्थिर नहीं है। हर वस्तु परिवर्तनशील है। उसके रूप में पल–पल परिवर्तन होता जा रहा है। उसकी उम्र पल–पल कम होती जा रही है। हम सोचते हैं कि ये वस्तु अखंड रूप से बनी हुई है। महामति जी कह रहे हैं कि परमधाम तो हमेशा अनादि है, अखंड है। उसके सामने सपने का ये संसार न था, न है और न रहेगा। लेकिन सारी दुनिया किसको मानती है? परमधाम को कल्पना मानती है और इस झूठे संसार को अपना मानती है। शरीर को लोग अपना मानते हैं। घर को अपना मानते हैं, जिंदगी भर कमाते कमाते घर बनाते हैं। सारा मोह उसी से लग जाता है। ये नहीं सोचते कि हमारा घर तो अखंड परमधाम है जो नूरी है। यहां तो ईंटों और पत्थरों का घर है। ईंटों को रंग पोत करके सुंदर बना दिया जाता है। हमारा शरीर रहता है, जब पक्षी पिंजरे से उड़ जाता है तो हमारे ही घर वाले जो हमें बहुत प्यारे लगते थे, हमें चिता पर लिटा देते हैं। हमारे मुँह में आग डाल देते हैं और इस शरीर को जला कर राख करके इस राख को खेतों में फेंक देते हैं, पानी में बहा देते हैं। दो चार दिन शोक मना लेते हैं। फिर कोई पूछने वाला नहीं होता। फिर उसी घर में मस्ती। ये माया की कहानी है। यदि हमने समय रहते

रहते अपने अखंड घर को याद कर लिया, अपने प्राणेश्वर, प्राणवल्लभ को याद कर लिया, जो कहीं दूर नहीं बैठा है, उसके पास जाने के लिए हवाई जहाज का टिकट नहीं चाहिए। कोई मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर में भटकने की जरूरत नहीं है। वो दिल के कोने में बैठा हुआ इतना नजदीक है, हम जो सोचते है, उससे पहले वो जान जाता है। उससे हम छिपाकर कुछ कर नहीं सकते। लेकिन दुनियां कितनी नादान है, उसको पाने के लिए उसने बड़े बड़े आश्रम, मठ और मंदिर बना दिए हैं, भाग भाग कर जाती है, पैदल परिकरमा करती है, गाती है, बजाती है। इस अंधी दुनियां को ये पता नहीं कि दुनियां, तू कहाँ भागी जा रही है, तेरे दिल के कोने में वो बैठा हुआ है।

' सेहेरग से नजीक, आड़ा पट न द्वार।'

किसी तरह का परदा नहीं। दोनों एक हैं। वाणी कह रही है कि हम और तुम दो नहीं हैं।

'मैं हक अर्स में जुदे जानती, ल्यावती सब्द में बरनन।'

हमने जुदा जाना था कि हम राजजी को रिझाते हैं इसीलिए हम अलग है। और राजजी अलग है। राजजी ये बता रहे हैं कि ये दुनिया न थी, न है, न होगी। मैंने तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करने के लिए, तुम्हें अपने दिल का भेद बताने के लिए, लीला रूप से तुम्हारी सुरता को भेजा है और यहां भी तुम्हारे दिल में बैठा हूं। वहां तो तुमसे एक पल के लिए भी जुदा नहीं होता और तुम अंदर की नजर से देखो तो यहां भी मैं तुमसे जुदा नहीं हूं। लेकिन यहां जितने सुन्दर साथ बैठे हैं, बोलचाल में तो सभी कह देगें कि राजजी हमारे दिल में बसते हैं लेकिन क्या व्यवहार में हैं? व्यवहार में जिस दिन हो जाएगा उस दिन हम साक्षात् परमहंस हो जाएगें। सब के दिल में धनी के चरन कमल वास करने लगेगें। इसीलिए धाम धनी कहते हैं,

'हुआ है ना होएसी तो क्यों दीजे अर्स मिसाल।।'

ये संसार न कभी था और न कभी होगा। इसलिए इस संसार की किसी भी उपमा को परमधाम के साथ नहीं जोड़ा जा सकता। अक्षरातीत का मुखारबिंद कितना सुंदर है, हम अरबों खरबों सूर्यों का तेज बताएँ, अरबो खरबो चंद्रमा की शीतलता बताएँ, अनंत फूलों की कोमलता बताएँ, तो भी संभव नहीं। इस दुनियां की हर वस्तु नश्वर है। अक्षरातीत की शोभा के साथ तो उसकी उपमा ही नहीं दी जा सकती। जो नहीं है, वो है की बराबरी कैसे कर सकता है? लेकिन कहे बिना भी बनता नहीं है। क्योंकि परमधाम की आत्माओं के धाम हृदय में उस शोभा को बसाना है इसलिए न चाहते हुए भी महामति जी के तन से ऐसा वर्णन करवाया जा रहा है ताकि सुंदरसाथ कुछ तो अपने दिल में धनी की शोभा को बसाएँ।

'ए बारीक बातें अर्स की'

ये परमधाम की गुह्य बाते हैं। 'किरंतन' में विरह रस का प्रकरण आता है जिसमें महामति जी के द्वारा प्रार्थना की गई है, सब सुंदरसाथ को कष्टों से हटाने के लिए।

'वालो विरह रस भीनों रंग विरहमां रमाडतो, वासना रूदन करे जल धार।'

बहुत मार्मिक प्रसंग है जिसमें प्रार्थना की जा रही है कि धाम धनी, हमको माया के दुखों की दुनियां में क्यों डाला ? लेकिन 'सिनगार' में इस तरह की बातें नहीं की जाएँगी। सुंदरसाथ में हर तरह का व्यक्तित्व होता है, कोई दुखों से व्याकुल होता है। एक बार बुद्ध के पास एक भिक्षुक एक व्यक्ति को लेकर आया कहा, कि भगवान, मैंने इस व्यक्ति को बहुत उपदेश दिया लेकिन ये मेरी बात सुनता ही नहीं है। बुद्ध ने उस व्यक्ति को गौर से देखा, कहा कि तुम भोजन लाओ और कहा इसे खिलाओ, ये तीन दिन से भूखा है। जो व्यक्ति तीन दिन से भूखा है, वो क्या उपदेश सुनेगा। खिलाया और बुद्ध ने कह

दिया कि इसके लिए यही उपदेश है और उसको विदा कर दिया। बाद में उस व्यक्ति ने आकर के बुद्ध का ज्ञान ग्रहण किया। जब उदयपुर में चारों तरफ से औरंगजेब की सेना अत्याचार कर रही हो, किसी का हाथ कटा हो, किसी का पांव कटा हो, कोई दुखी हो, किसी के घर चूल्हा न जला हो और उसको हम परमधाम की मारफत की बात सुनाएँ, तो कैसे सुन सकता है? क्योंकि मारफत के स्तर पर तो हर कोई नहीं पहुंच सकता। हां, उस स्तर पर ले जाने के लिए दुखों से छुटकारा देना पड़ता है। हमें भोजन नहीं मिल रहा हो और अभी हमारे अंदर प्रेम पैदा नहीं हुआ, कैसे संभव है कि परमधाम का ज्ञान सुन कर के कोई भी उस मारफत की बात को ग्रहण करेगा। इसलिए अलग–अलग प्रसंगों में अलग अलग कथनों के द्वारा सुंदरसाथ को समझाया गया है। ज्ञान ग्रहण हम तभी कर सकते हैं, जब घर से निश्चिंत हो। हमारे शरीर पर कपड़ा नहीं, घर में चूल्हा जलाने की स्थिति नहीं है तो हमें अच्छा नहीं लगेगा कि हम वाणी पढें या चितवनि करें। कोई विरला होगा जो इन दुखों से परे हो जाएगा। जो दृष्टा होकर देख रहा है, वो सोचेगा कि हमें क्या लेना देना सूरज उगता है, सूरज डूबता है, दुख आते हैं, दुख जाते हैं। ये तो बहुत ऊँची स्थिति है लेकिन सबकी स्थिति ऐसी नहीं बन सकती इसलिए धाम धनी ने ये छः प्रकरण उतारे थे कि यदि सुंदरसाथ कष्ट में हो तो धामधनी से प्रार्थना करें लेकिन जब ज्ञान की अवस्था आ जाती है। एक बच्चा है उसको किसी ने मारा तो वो भी हाथ उठा देता है, फिर रोता है। लेकिन वही बच्चा जब ज्ञानी बन जाता है तो कोई मारता है तो वो दुखी नहीं होता। एक बार भगवान बुद्ध बैठे हुए थे, दस हजार व्यक्तियों के सामने। एक व्यक्ति ने देखा कि उसकी बहू, उसकी पत्नी, उसके बेटे, सारे भागे जा रहे हैं भगवान बुद्ध के लगाये हुए ध्यान शिविर में। उसने सबको मना

किया कि कोई नहीं जाएगा, लेकिन सभी उसकी बात को अनसुनी करके चले गए। उस व्यक्ति को इतना गुस्सा चढ़ा कि वो आया और भरी सभा के बीच में भगवान बुद्ध के मुँह पर थूक दिया। भगवान बुद्ध कुछ नहीं बोले, मुस्करा भर दिए। उस व्यक्ति ने सोचा कि मैंने क्या कर दिया। ये कैसा व्यक्ति है, कोई दूसरा व्यक्ति होता तो इसका प्रतिकार करता और ये कैसा शख्स है जो इतनी भीड़ के सामने, दस हजार व्यक्तियों के सामने मैंने इनके मुख पर थूका है और इनके चेहरे पर कोई तनाव नहीं। भीड़ में से किसी ने कुछ बोला नहीं क्योंकि भगवान बुद्ध का आदेश था कि इस व्यक्ति को कोई कुछ नहीं कहेगा। रातभर करवटें बदलता रहा और सवेरे आया, फूट फूट कर रो पड़ा कि भगवान! मैंने कितना बड़ा अपराध कर दिया। बुद्ध कहते हैं कि तुमने तो कुछ नहीं किया। कल वाला बुद्ध नहीं है और कल वाले तुम नहीं हो। वो व्यक्ति कहता कि मुझे क्षमा कर दीजिए। भगवान बुद्ध कहते हैं कि कैसी क्षमा। मुझे तो कुछ भी लेना देना नहीं। इसका भाव क्या है? जब राजकुमार सिद्धार्थ बचपन में होगें तो उनके ऊपर कोई थूकता तो उनको बुरा लगता। लेकिन उस अवस्था में पहुंच गए जिसमें इस अपमान का कोई महत्व नहीं होता। उसी तरह से जब तक हमारी आत्मा जागृति की उस अवस्था में नहीं पहुंच पाती, तब तक जीव के दुखों को देखती है तो ये भी परेशानी का अनुभव करती है। हमारा जीव संसार के दुखों को भोगना नहीं चाहता। कोई भी नहीं चाहता कि मैं नंगा रहूं कपड़ों की कमी से। कोई नहीं चाहता कि मैं भूखों फिरों। कोई नहीं चाहता कि मैं तपती दोपहरी में पेड़ के नीचे गुजारा करूं। लेकिन जब ज्ञान चक्षु खुल जाते हैं, तो उसको महल और झोपड़ी में भेद नहीं प्रतीत होता। उसको छप्पन प्रकार के व्यंजनों में और सूखी रोटी में, मान और अपमान में, सुख और दुख में कोई भी भेद नहीं

दिखता। लगता है कि ये तो स्वप्नवत है। प्रवाह है, चल रहा है, चलता रहेगा। महामति जी की आत्म कहती है,

'ए बारीक बातें अर्स की, इत दिल जुबां पोहोंचे नाहें।'

परमधाम की ये गुह्य बातें हैं। हकीकत की बात क्या है, मारफत की बात क्या है, मैंने संक्षिप्त में आपको बताया लेकिन कहते हैं कि यहां की बुद्धि, यहां के दिल से उसका वास्तविक वर्णन नहीं हो सकता।

'ए हुकम कहावे हक का,' और ये बातें जो मैं कह रही हूं, राजजी का हुकम कहलवा रहा है। राजजी का आवेश स्वरूप ही मेरे तन से इन सूक्ष्म बातों का वर्णन कर पा रहा है अन्यथा संसार इन बारीक बातों को जान नहीं सकता। संसार ने परमात्मा को क्या बनाया है? एक आराध्य जिनके सामने जाने से अपने पाप कट जाएं। सारे इस्लाम का एक ही सिद्धांत है कि महंमद पर ईमान लाओ, तुमें बहिष्त मिलेगी। क्रिश्चिन जगत क्या कहता है? कि ईसा मसीह पर विश्वास रखो। शैतान को छोड़ो, तो ईसा मसीह की कृपा से उनके पिता के राज्य में तुम्हें अखंड सुख मिलेगा। सनातनी हिंदू समाज क्या कहता है? कोई कहेगा कि शंकर जी को मानोगे तो शिवलोक मिल जाएगा। विष्णु भगवान को मानोगे तो बैकुंठ में चले जाओगे। शून्य समाधि लगाओगे तो निराकार में हो जाओगे। वाणी कुछ और कह रही है। वाणी यह कह रही है कि कृपा करने वाला और कृपा लेने वाला, दो है ही नहीं।

'मैं हक अर्स में जुदे जानती, ल्यावती सब्द में बरनन।'

मैं उनकी अहलादिनी शक्ति हूं, उनकी आनंद स्वरूपा हूं। मेरा दिल भी तो उन्हीं का है, मेरा अपना कोई अस्तित्व ही नहीं है कि मैं उनसे कुछ मांगूँ। और मुझसे चाहकर भी वो अलग नहीं रह सकते, न मैं रह सकती हूँ। इसलिए वाणी का ज्ञान सबसे न्यारा है।

'वाणी मेरे पिउ की न्यारी जो संसार' इसलिए कहा जाता है। लेकिन हमारा दुर्भाग्य है इस अलौकिक ज्ञान को सारे संसार में फैला होना चाहिए था। लेकिन हमने इसको मंदिरों की चार दीवारी में कैद किए रखा। आरती–पूजा, घंटी–घड़ियाल में सारी जिंदगी लगा दी। शरीयत, तरीकत हमसे छूट नहीं पाई, हम हकीकत में कहां से प्रवेश कर पाएँगें। हकीकत में जब कदम नहीं रखा तो मारफत की बातों को हम कहाँ समझ सकेगें? इसलिए सारा संसार प्यासा है, हमें अपनी ऊर्जा इस ज्ञान को फैलाने में लगानी चाहिए। सुन्दरसाथ को जागरूक होने की आवश्यकता है कि धाम धनी का यह अथाह ज्ञान कैसे समाज में फैले, कैसे मानवता इससे लाभ उठाए।

'ए हुकम कहावे हक का, इलम हुकम के माहें।।'

मेरे तन से जो वाणी उतर रही है, वो राजजी के हुकम से उतर रही है। ये तारतम ज्ञान का सागर जो प्रवाहित हो रहा है, राजजी के आवेश से मेरे अंदर प्रवाहित हो रहा है। मैंने इस वाणी का एक अक्षर भी नहीं कहा है। जो कुछ कहा है स्वयं धाम धनी ने कहा है। तारतम लेते समय हम ये प्रतिज्ञा करते हैं, 'ए सुख देऊं ब्रह्मसृष्ट को, तो मैं अंगना नार' लेकिन बाद में हम इसकी कसौटी पर स्वयं को खरा सिद्ध नहीं कर पाते। हम अपनी एक नई दुनिया में बस जाते हैं। जिसमें खाना पीना होता है, मौज मस्ती होती है। आप एक ही लक्ष्य लीजिए, दिखावे से अलग होकर आप अपने धन का उपयोग वाणी के प्रचार में लगाइए, वाणी की ज्योति को जलाइए। इस वाणी की ज्योति जिसके हृदय में जल जाएगी, जन्म जन्मांतरों के उसके पाप के बंधन दूर हो जाएँगे। और उसका हृदय अखंड परमधाम का रसपान करेगा। सारे संसार को अपना परिवार मानते हुए सारे संसार के कल्याण के लिए चिंतन कीजिए, इसी में आपकी श्रेष्ठता है।

'महामत कहे सुनो साथजी, बुध जुबां करे बरनन। C
ले सको सो लीजियो, ए नेक कह्या तुम कारन'।।

प्रेम को अंग बरनन

'प्रेम देखाऊं तुमको साथजी',–

अक्षरातीत धाम के धनी इस परिकरमा ग्रंथ के प्रकरण में प्रेम की पहचान बता रहे हैं। इसके पहले सारा वर्णन हुआ है परमधाम का। परमधाम में हौज कौसर कैसा है, पुखराज कैसा है, मानिक पहाड़ कैसा है, यमुनाजी के सातों घाट कैसे हैं। लेकिन हमको ये नहीं समझना चाहिए कि जैसे इस दुनिया में नदी के किनारे घाट होते हैं वैसे ही परमधाम में हैं। वहां के पशु पक्षियों को यहां के पशु पक्षी नहीं समझना चाहिए। परमधाम के पशु पक्षी ऐसे हैं कि यदि एक पल की भी जुदाइगी हो जाए राजजी से तो लगता है कि प्राण छोड़ देगें। परमधाम में कोई मर नहीं सकता लेकिन ऐसी भावना है उनकी प्रेम की जो परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों को चुनौती दे रही है। पहली बात तो ये है कि परमधाम का एक–एक कण राजजी का स्वरूप है। वहां की धरती वैसे ही राजजी को रिझाती है जैसे सखियां रिझाती हैं। हवा रिझाती है, आकाश रिझाता है। यहां तक कि दीवारें भी बात करती हैं। परमधाम के हर कोने में कुछ भी लीला होती है, उसकी जानकारी सब को रहती है।

'और खेलौने जो हक के, सो दूसरा क्यों केहेलाए।
एक जरा कहिए तो दूसरा, जो हक बिना होए इफ्तदाए।।'

जो परमधाम में पशु पक्षी हैं, उनको खिलौने नहीं समझना चाहिए। ये नहीं समझना चाहिए कि ये पशु पक्षी हैं। इनमें राजजी का स्वरूप क्रीड़ा कर रहा है और लीला रूप में वही दिख रहा है। हमको कुछ अजीब सी बातें लगती होगीं। क्या सच्चिदानंद पारब्रह्म स्नान करते हैं? सच्चिदानंद पारब्रह्म शयन करते है? सच्चिदानंद पारब्रह्म भोजन करते हैं? क्या वो

टहलने जाते हैं? ये तो मानवीय लीला है, लेकिन जिस दुनियां में हम रहते हैं उसमें सच्चिदानंद पारब्रह्म को कहा जाता है, आनंद का स्वरूप। वो आनंद का स्वरूप कैसा है? कुछ बातें मस्तिष्क में घर कर जाती हैं जैसे परमात्मा आनंद का स्वरूप है तो उसका आनंदमयी स्वरूप कैसा है? क्या वो चुपचाप मौन हो करके बैठा रहता है? पहली बात तो दुनियां ये मानने को ही तैयार नहीं है कि परमात्मा का रूप होता है। एक वर्ग है जो परमात्मा को ये मान लेता है कि साकार है। वो भी अंधेरे में भटकने वाली बात होती है। क्योंकि जो पैदा हुआ है, उसका शरीर अवश्य छूटेगा। दूसरी विचारधारा ये कहती है कि नहीं, सब कुछ निराकार है। ये सूरज, चंद्रमा, विद्युत की जो ज्योति दिखाई दे रही है, ये लय हो जाने वाली है। जो एक निराकार है एकमात्र वही परमात्मा है, उसके सिवा और कुछ भी नहीं है। और उसी निराकार से सब कुछ प्रकट होता है। एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि परमात्मा अनादि है, अखंड है। उसके स्वरूप में न कोई चीज बन सकती है, न कोई चीज नष्ट हो सकती है। जो सच्चिदानंद परमात्मा है, वो अखंड है, एकरस है और सत्य, चेतन और आनंद का स्वरूप है। आनंद किसको कहते हैं? जिसमें किसी भी तरह का कभी कष्ट न हों। आनंद और सुख में अंतर होता है। आनंद आत्मा का विषय है और सुख अंतःकरण का विषय है। जैसे चिलचिलाती धूप में आपको बिठा दिया जाए तो आपको कष्ट होगा। आपकी अंगुलियों में आलपिन चुभो दी जाए, ब्लेड से काटा जाए तो आपको कष्ट होगा। उस कष्ट का अनुभव किसको होगा? अंतःकरण को होगा। यदि आपके हाथों को इंजैकशन लगा कर के सुन कर दिया जाए तो कितना भी आलपिन चुभाया जाए, चाकू से, ब्लेड से काटा जाए, तो आपको कुछ भी पीड़ा नहीं होगी, क्योंकि आपकी इंद्रियों में उसको अनुभव करने की शक्ति नहीं रह गई।

जो आपके अंदर चेतन जीव बैठा है, वो कूटस्थ है। सुख और दुख को, वो केवल जानता भर है। अंतःकरण के माध्यम से सुख का अनुभव होता है। अंतःकरण के माध्यम से दुख का अनुभव होता है। जैसे अभी कोई व्यक्ति आपकी प्रशंसा करने लगे तो आपको बहुत अच्छा लगेगा और यदि आपके अवगुणों को भरी सभा के बीच में कहा जाए तो आपका चेहरा तमतमा जाएगा। घटना एक ही लेकिन जो चीज हमारे अंतःकरण को अच्छी लगती है, तो वो सुख है और जो अच्छी नहीं लगती वो दुख है। लेकिन आनंद का जो स्वरूप है, सुख और दुख दोनों से परे है। जो सच्चिदानंद पारब्रह्म है, वो मानवीय लीलाओं में नहीं आता। न कभी सुखी होता है, न कभी दुखी होता है। जैसे एक दृष्टांत मैं देता हूं–बंदा वैरागी को मुगल काल में बहुत यातना दी गईं। बंदा बैरागी गुरू गोबिंद सिंह के शिष्य थे। इनका नाम था पहले लक्ष्मण सिंह। लक्ष्मण देव वैरागी जम्मू के रहने वाले थे। एक बार शिकार खेलने जंगल में गए। उन्होंने एक हिरनी को तीर मारा। हिरनी गिर पड़ी। जब उन्होंने हिरनी की गर्दन काटी, तो देखा कि उसमें से एक बच्चा निकला, वो बच्चा भी मरा हुआ था। इसलिए बंदा वैरागी को उस दिन वैराग्य चढ़ गया कि मैंने एक हिरनी की जान ले ली और उसके साथ उसका बच्चा भी मर गया। उस दिन से उन्होंने सब कुछ छोड़ दिया और जा कर के तप करने लगे। इधर औरंगजेब से गुरू गोबिंद सिंह का युद्ध होता है और वो दक्षिण की तरफ चले जाते हैं। बंदा वैरागी अपनी साधना में लीन हैं। गुरू गोबिंद सिंह कहते हैं कि बंदा ! जब धर्म ही नहीं रहेगा, तो तुम्हारा ये वैराग्य, ये संत भेष किस काम का? अब बंदा वहां से प्रण करते हैं, धर्म की रक्षा के लिए तलवार उठाते हैं गुरू गोबिंद सिंह के आदेश से। बहुत से किले जीत लेते हैं लेकिन कुछ लोगों के धोखा देने के कारण बंदा वैरागी पकड़े जाते हैं। आपको मालूम है, इतिहास यही कहानी

कहता है, मुसलमानों ने जिसको भी मारा है, तड़पा तड़पा कर मारा है। पहले हाथ काटा जाता है, पैर काटा जाता है, बंदा वैरागी बिल्कुल चुपचाप मुस्करा रहा है। जल्लाद रो पड़ता है कि बंदा! तू इंसान है या पत्थर है। बंदा वैरागी हंसते हुए कहते हैं कि पागल! तू मेरे शरीर को काट रहा है, मुझे थोड़े ही काट रहा है। ये शरीर बंदा वैरागी नहीं है। हम लोगों को यदि आलपिन चुभ जाए तो क्या कहते हैं? मुझे आलपिन चुभ गया! आपको किसी ने चांटा मार दिया तो क्या कहेगें? मुझको चांटा मार दिया। प्रश्न ये है कि क्या आप शरीर है? यदि आप शरीर हैं तो मरने के बाद आपका अस्तित्व समाप्त होना चाहिए लेकिन आपके अंदर जो चेतन बैठा है, कितने जन्मों से कभी कुछ देख रहा है, कभी कुछ देख रहा है। कभी आपका जीव हाथी बना होगा, कभी घोड़ा बना होगा, कभी स्त्री की योनि में गया, कभी पुरूष की योनि में गया। न जाने कितने तनों को इसने धारण किया है। हम अपने स्वरूप को तो नहीं जानते। आत्मा का स्वरूप क्या है? आत्मा का आनंद क्या है? इसको कोई नहीं जानता। हम किसके पीछे भागते हैं? जो दृश्यमान जगत है। जिह्वा को स्वादिष्ट लगने वाली मिठाई खा ली तो क्या कहते हैं कि बहुत मज़ा आ गया। कुछ कड़वी चीज़ खा ली तो क्या कहते हैं कि मूड़ खराब हो गया। अच्छे कपड़े मिल गए तो खुश। खराब कपड़े मिल गए तो व्यथित। ये क्या है? सुख और दुख के बंधन में हमारा मन भटक रहा है। हम नहीं। और मन के साथ हम जुड़े हुए हैं, तो इसी को हम सुखी और दुखी होना समझते हैं। यही तो अज्ञान है। सच्चिदानंद पारब्रह्म इन सारी लीलाओं से अलग है। वो आनंद का स्वरूप है। ऐसा आनंद कि यदि आनंद के अनंत सागर हो और उस अनंत सागर की एक बूंद सारे ब्रह्मांड में आ जाए, जिसमें हमारी पृथ्वी जैसी असंख्य पृथ्वियां हों, तो भी उसका ओर छोर नहीं मापा

जा सकता। हम जिसको आनंद मानते हैं, वो तो आनंद है ही नहीं। अच्छे कपड़े पहनने से खुशी हुई। कितने दिन के लिए? कपड़ा तो फट जाएगा। हम अपना सुंदर चेहरा देखकर खूब खुश होते हैं। कितने सालों तक? कुछ सालों के बाद, बुढ़ापे में यही चेहरा भद्दा हो जाएगा। खूब स्वादिष्ट मिठाई हम खा रहे हैं, कितने समय तक उसका आनंद रहेगा? थोड़ी देर के बाद लगेगा कि इसमें तो कुछ भी स्वाद नहीं है। सृष्टि में कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है। हर क्षण कंपनशील है, हर क्षण रूप बदल रहा है। और इसके विपरीत जो सच्चिदानंद पारब्रह्म है, वो हमेशा एकरस है, अखंड है। अब उसकी बात बताई जा रही है इस प्रकरण में कि 'ले सको सो लीजियो, ए नेक कहया तुम कारन।' परमधाम की ब्रह्मात्माओं के लिए ये परमधाम के वर्णन की जो किताब है, 'परिकरमा' किताब 'दुल्हिन अर्स अजीम की।' परमधाम की दुल्हिन कहा गया है। क्यों? क्योंकि परमधाम में जो 25 पक्ष हैं, सभी पक्षों में श्री राजजी का ही स्वरूप लीला कर रहा है और हर पदार्थ किसी न किसी रूप में उसी माधुर्य भाव से राजजी को रिझा रहा है, जैसे सखियां रिझा रही हैं। धरती में वही भाव है, राजजी के अंगो को स्पर्श करती हुई हवा बह रही है, वो उससे खुश है, आकाश भी राजजी के स्वरूप को देखकर, वो भी रिझा रहा है। पशु पक्षी रिझा रहे हैं। दीवारों पर जो बने हुए चित्र हैं, वो भी रिझा रहे हैं। वो है क्या? जिसको हम हिंदी साहित्य में तेजस कहते हैं, ओजस कहते हैं या फारसी भाषा में जिसको जलाल कहते हैं। जलाल का अर्थ क्या होता है? सौंदर्य। अनंत सौंदर्य। अनंत प्रेम। वही अक्षरातीत का स्वरूप है! हर व्यक्ति के चारों ओर एक आरो होता है, आभा पुंज! दुनिया के भावों में समझ लीजिए कि सच्चिदानंद पारब्रह्म का स्वरूप अरबों खरबों क्या अनंत सूर्यों से ज्यादा प्रकाशमयी है। दुनिया इतना तो मान लेती है कि

परमात्मा प्रकाशमयी है, लेकिन फिर भी निराकार कह देती है। संसार का कोई भी मनीषी परमात्मा के स्वरूप का चित्रण नहीं कर सका था। ये नहीं बता सका था कि परमधाम कैसा है? दुनिया ने परमधाम की कल्पना की है। किसी ने स्वर्ग की कल्पना की, किसी ने बैकुंठ की कल्पना की। जन्नत और दोजख की बात कतेब परंपरा में भी आती है लेकिन वास्तव में परमधाम क्या है, परमधाम का स्वरूप क्या है, संसार में कोई भी उसके बारे में बोल नहीं सका। इस प्रकरण में विशेष रूप से ये बात बताई गई है कि 'क्यों न होए प्रेम इनको', ब्रह्म सृष्टियों में ही प्रेम क्यों है? हमारे अंदर क्यों नहीं प्रेम होता? पहली बात तो ये देखिए, परमधाम शब्दातीत है, त्रिगुणातीत है। सत्व, रज और तम के संसार में प्रेम नहीं हो सकता। तमोगुण जब मनुष्य को ग्रस लेता है, तो केवल काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के वशीभूत मनुष्य हो जाता है। कसाई को कहिए कि वो आंखें बंद करके ध्यान करे, तो उससे नहीं हो सकता क्योंकि सवेरे से लेकर रात तक न जाने कितने जानवरों की गर्दन पर वो तलवार चलाता है। उसको संवेदना नहीं है कि कोई व्यक्ति तड़पता है तो कैसे उसको पीड़ा होती है। वहीं एक भक्त को यदि किसी प्राणी को तड़पते हुए देखने को मिल जाए तो वो बेहोश हो जाता है। उसको इतना भी सहन नहीं होता कि उसके पैरों से कोई चींटी कुचले क्योंकि चींटी का कुचल कर मरना भी उससे सहन नहीं होता और वहीं एक कसाई है, जो गाय को, बैल को तड़पते हुए देखकर खुश होता है कि आज मैंने शिकार किया है। दिल दो हैं। एक का दिल क्रूरता से भरा है। एक का दिल कोमलता से भरा है लेकिन ये सत्व और तम का एक विवरण है। एक और दिल होता है जो रजोगुण से ग्रसित होता है। सवेरे से लेकर शाम तक हाय–हाय मची है। इतना कमा लूं, कोठी बना लूं, ये कर लूं, ये कर लूं। वो रजोगुण

से ग्रसित है क्योंकि संसार की इच्छाएं उसके पीछे भाग रही हैं। और इच्छाओं को पकड़ने के लिए वो भाग रहा है। विदेशों में चले जाइए। क्या होता है? पति भी कमाता है। पत्नी भी कमाती है। कई–कई गाड़ियां होती हैं, कोठियां होती हैं। फिर भी संतोष नहीं हैं क्योंकि तृष्णा सबका पीछा कर रही होती है। पश्चिमी दुनिया उसमें लगी है और भारत के लोग भी उनके पीछे भाग रहे हैं लेकिन एक और स्थिति है, त्रिगुणातीत अवस्था की। भृतृहरि ने इसकी कल्पना की थी कभी, कि वो दिन कब आएगें जब गंगा का किनारा होगा, हिमालय की गुफा होगी, मैं ध्यान में इतना मस्त हो जाऊंगा कि मुझे कुछ पता नहीं रहेगा और हिरन आ करके अपने सींग से मेरी पीठ खुजलाया करेंगें तो भी मुझे होश नहीं रहेगा। ये कल्पना किस की है? उस भृतृहरि की है जो सारे भारत का चक्रवर्ती सम्राट था लेकिन जब वैराग्य का असर आता है तो सारे राजमहल को ठोकर मारकर के वो वैरागी निकल जाता है। कहने का तात्पर्य क्या है? एक प्राणी जो रजोगुण और तमोगुण से ग्रसित है, वो संसार के पीछे भाग रहा है और एक व्यक्ति जो राजमहलों में रह रहा है, सोने के पलंग पर सोता है, सोने के सिंघासन पर बैठता है, 56 प्रकार के व्यंजन का रसास्वादन करता है, लेकिन जब वैराग्य का सागर हिलोरे मारता है उसके दिल में, तो सबको लात मार देता है। अपने राजमहल को ठुकरा देता है, अपनी विश्व सुंदरी पिंगला रानी को ठुकरा देता है, अच्छे अच्छे भोजन को ठुकरा देता है और हाथ में भिक्षा पात्र लेकर के चल देता है कि जो भिक्षा में मिलेगा, मैं वही खाऊंगा, लेकिन मुझे शाश्वत आनंद चाहिए। संसार के प्राणी जिस सुख को खोजने के लिए भटक रहे हैं, उसको पा करके भी ठुकरा देते हैं। दो मित्र थे, बचपन के। एक बन गया विरक्त और एक बन गया राजा। राजा को याद आया कि बचपन में जो गुरूकुल का मेरा मित्र

था, वो महात्मा बन गया है। एक दिन चल कर के तो मैं उसको लाऊं। बुलाया। महात्मा जी आए। उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारे रथ पर नहीं आऊंगा। मैं पैदल आऊंगा। कोई बात नहीं। पैदल आ गए महात्मा जी। महात्मा जी सोचते हैं कि मेरा मित्र कितना भाग्यशाली है। मैं रहता हूं टूटी फूटी झोपड़ी में। गर्मी भी लगती है, सर्दी भी लगती है। मेरे पास टूटा फूटा कंबल है और मेरा मित्र सोने के पलंग पर सोया करता है, हीरे मोतियों के हारों से लदा रहता है, अच्छे अच्छे भोजन करता है और मैं तो जंगल में जो कंदमूल मिल जाते हैं, वही खा लेता हूं या भिक्षा में जो मिलता है, वही खा लेता हूं। राजा सोचता है कि मैंने अपने चारों तरफ माया इकट्ठी कर रखी है। सोने का पलंग तो है लेकिन मैं दिन रात चिंता में डूबा रहता हूं कि पड़ोसी राजा मेरे ऊपर हमला कर देगा तो मैं क्या करूंगा? मेरा मित्र कितना भाग्यशाली है कि सबको लात मारकर जंगल में बैठा है। न परिवार की चिंता, न समाज की चिंता, न राजपाट की चिंता। वो दिन रात परमात्मा के ध्यान में मस्त है। दोनों को अपनी स्थिति से संतुष्टि नहीं है। राजा अपनी स्थिति से दुखी है और महात्मा अपनी स्थिति से दुखी है क्योंकि दोनों को चरम आनंद की प्राप्ति नहीं हुई है। संसार भौतिक सुख के पीछे भाग रहा है और महात्मा आध्यात्मिक सुख के पीछे भाग रहे हैं। लेकिन दोनों को ही अशांति ने घेर रखा है। प्रेम दोनों के पास नहीं हैं। आसक्ति, मोह अलग चीज है। एक तो द्वेष होता है। सिंह है जंगल में, यदि शेरनी गुर्राएगी तो सहन कर लेगा। लेकिन जब वो भूख से व्याकुल होगा, जब गर्जेगा तो पूरा जंगल दहल जायेगा। वो किसी पर रहम नहीं करेगा। किसी जानवर की गर्दन दबाकर खून पीने में उसको आनंद आएगा। उसके पास दया नहीं है। लेकिन शेरनी के पास जब वही शेर रहता है तो उसमें कुछ संवेदना आ जाती है। शेरनी गुर्राती है तो भी शेर

को सहन करना पड़ेगा। उसको भी अपने बच्चों के साथ खेलने में आनंद आता है। हर प्राणी के अंदर कुछ न कुछ आनंद की तड़प होती है, प्रेम की तड़प होती है और यही प्रेम और आनंद का जो परिपक्व रूप है, वो है सच्चिदानंद परमात्मा! किसी व्यक्ति को बहुत अच्छा परिवार मिल जाए, बहुत चाहने वाले समाज के मित्र, दोस्त, सखी सहेलियां मिल जाएं, फिर भी उसको आत्म संतुष्टि नहीं हो सकती जब तक कि सच्चिदानंद पारब्रह्म का प्रेम उसके हृदय में हिलोरें न लेने लगे। इसलिए धामधनी ने इस प्रकरण में यही बताया है–

'प्रेम देखाऊं तुमको साथजी, जित अपना मूल वतन।'

प्रेम कहां है? केवल परमधाम में। इस संसार में नहीं। इस संसार में आकर्षण होता है। कहीं शरीर का आकर्षण होता है, कहीं दिल का आकर्षण होता है। इससे परे जब हम हो जाएगें, तो हमारे दिल में सच्चिदानंद पारब्रह्म के प्रति आकर्षण होता है। और वही सच्चा आकर्षण है, वही सच्चा प्रेम है। जब संसार न दिखने लगे, केवल वो दिखने लगे तो वही प्रेम अखंड माना जाता है। मीरा ने, सूर ने, रसखान ने कृष्ण से प्रेम किया। उनको संसार के सुखों से कोई लेना देना नहीं है। हम पूजा पाठ करते हैं लेकिन हमारा ध्यान कहीं न कहीं और रहा करता है। इसलिए धाम धनी ने कहा है–

'इस्क बिना करे बंदगी, कहें हम टालत है करज।'

दुनिया की बंदगी चाहे मंदिरों की बंदगी हो, मस्जिदों की हो, गिरजाघरों की हो, गुरूद्वारों की हो, बिना इश्क की बंदगी है। इनके पास प्रेम नहीं है। मंदिरों में कह दिया गया है पुजारी जी को आरती करनी है, भोग लगाना है, परिक्रमा करनी है। मस्जिदों में मुसलिम लोग अपना नमाज पढ़ लेते हैं, गिरजाघरों में ईसाई लोग खड़े होकर बस प्रार्थना कर लेते हैं, गुरूद्वारों में लोग गुरू ग्रंथ साहेब का पाठ कर लेते हैं। सब औपचारिकता

निभाई जा रही है। प्रेम का तात्पर्य ही क्या है?
'अष्ट पहर भीना रहे, प्रेम कहावे सोए।' जिसमें अपने शरीर की सुध न हो, संसार की सुध न हो, कुछ चाहत न हो, केवल लुटाना ही रह जाए। दुनिया में आप जगन्नाथपुरी चले जाएं, कितना अच्छा अच्छा भोग बनाया जाता है। यदि भगवान जगन्नाथ एक चम्मच भी खा लेगें तो पुजारी जी धरना दे कर के बैठ जाएगें कि भगवान! आज आपने तो मेरा प्रसाद खा लिया है, मुझे एक करोड़पति बना दीजिए। ये संसार की भक्ति है। सौ रूपये की मिठाई देगें, एक करोड़ का लाभ चाहेगें। दुनियां व्यवसाय करती है। परमात्मा से प्रेम नहीं करती। जिस दिन प्रेम हो जाएगा तो वो कहीं दूर थोड़े ही होता है। परमात्मा को किसी मंदिर, मस्जिद या गिरजाघर की चारदीवारी में कैद नहीं किया जा सकता। वो किसी के बंधन में रहने वाला नहीं है। मिलता तो है वो दिल से लेकिन दिल के कोने में उसको ढूंढने का प्रयास कौन करता है? जब तक प्रेम न आए तो। और प्रेम आएगा, त्रिगुणातीत अवस्था में। रसखान को कृष्ण से प्रेम है, वृदांवन की गलियों में पागल हो कर घूम रहे हैं लेकिन कोई चिंता नहीं है कि कब से खाया है कि नहीं। उनके अंदर विरह है। संसार नहीं दिखता, शरीर नहीं दिखता। बस उनका एक ही लक्ष्य है कि कृष्ण दिख जाए। अपने कन्हैया के प्रेम में वो दीवाने हैं। वैसे ही मीरा है, सूर है। ये तो दुनिया के भक्तों की बात बताई है। जो हिमालय की गुफाओं में बैठे हैं उनको कुछ नहीं दिख रहा। आंखें बंद है तो बंद हैं। हम तो कहीं दो दिन के लिए भी यदि ज्ञानपीठ जाएं, कहीं धार्मिक संस्था में जाएं, यदि घर का समाचार न मिले तो कितने हम फोन कर डालते हैं, कितने लोगों से हम पूछ डालते हैं और वो लोग भी तो हैं जो बर्फ की गुफाओं में बैठे हुए हैं। कोई रोटी, दाल चावल उनको खाने को नहीं मिल रहा है। बर्फीले पहाड़ों में क्या मिलेगा?

कंदमूल खा लिया, कोई जड़ी बूटी खा ली। गुजारा कर रहे हैं। किस आशा में? कि कहीं न कहीं हमको परमात्मा का प्रकाश मिल जाए। इस संसार के ऋषि, मुनि, योगी यतिओं की बात हुई, लेकिन इनके पास भी प्रेम नहीं रहा। प्रेम कहां है? केवल परमधाम में और उसी प्रेम की बात कही जा रही है कि प्रेम शब्दातीत। अक्षरातीत शब्दातीत। प्रेम त्रिगुणातीत और यदि आपका हृदय त्रिगुणातीत नहीं होता, सत्व, रज, तम के बंधन में यदि आप रह जाएगें, तो आपके हृदय में भी प्रेम नहीं आ पायेगा।

'प्रेम धनी को अंग है', प्रेम क्या है? अक्षरातीत का ही स्वरूप है। लेकिन इस प्रेम को हम सांसारिक बंधनों में न बांधें। पिता–पुत्र में लगाव होता है। मां बेटे में लगाव होता है, भाई–भाई में लगाव होता है, भाई–बहन में लगाव होता है। लगाव होता है। उसकी तुलना परमधाम के प्रेम से नहीं की जा सकती। मुझसे कई बहनों ने प्रश्न किया कि क्या हम अपने पति को राजजी बना लें तो नहीं चलेगा? मुझे हंसी आई। इनका पति काम, क्रोध, लोभ, मोह के वशीभूत रहने वाला। राजजी का स्थान भला कौन ले सकता हैं? राजजी तो निर्विकार हैं। हम नहीं चाहते तो भी राजजी हमको चाहते हैं और यदि बहनें दो वक्त अपने पतिदेव को भोजन न दें तो देखिये उनका चेहरा लाल हो जाता है। राजजी तो कभी गुस्सा नहीं करते। कहने का तात्पर्य क्या है? कि ये संसार के रिश्ते राग–द्वेष से भरे होते हैं। यदि इनकी इच्छा पूरी न हो, पिता पुत्र को पैसे न दे, पुत्र कमाकर पिता को न दे, भाई भाई को कुछ न दे तो इन्हीं में दुश्मनी हो जाए। संसार के धरातल पर प्रेम को नहीं बांधा जा सकता।

'प्रेम सब्दातीत तो कह्या, जो हुआ ब्रह्म के घर।
सो तो निराकार के पार के पार, सो इत दुनी पावे क्यों कर।।'

संसार में प्रेम नहीं है। परमधाम में जितना प्रेम है, उसको एक

अनंत समुद्र माना जाए, तो उसकी एक बूंद बेहद मंडल के अंदर है। और बेहद मंडल में जो प्रेम का समुद्र है, उसकी एक बूंद ली जाए तो निराकार मंडल में आएगी। निराकार मंडल में जो प्रेम है, सुख है, उसको सागर माना जाए तो उसकी एक बूंद बैकुंठ में है और बैकुंठ में जो प्रेम और आनंद है, उसका रूप सागर की तरह माना जाए तो उसकी एक बूंद इस पृथ्वी लोक में है। और पृथ्वीलोक में यदि 5 अरब लोग रहते हैं तो उसमें एक बूंद को बांटा जाए तो समझ लीजिए कि क्या हिस्सा होता है? हम तो प्रेम के सागर के सामने खडे होने की भी सामर्थ्य नहीं रखते।

'प्रेम धनी को अंग है, कहूं पाइए ना या बिन।।'

प्रेम इस संसार में नहीं है।

'कई कोट ब्रह्मांडों न पाइए, प्रेम धाम धनी बिन।'

धनी के सिवा कहीं प्रेम नहीं है। हम क्या सोचते हैं? जो संसार के प्राणी भटक रहे हैं, वो तो भटक ही रहे हैं। जो तारतम लिये हुए सुंदरसाथ है, वो भी उनसे ज्यादा भटक रहे हैं। कई साल पहले बरोदरा आश्रम की जब नींव डाली गई थी, तो वहां एक परिवार रहता था, सुंदरसाथ का। पति–पत्नी दोनों रहते थे। जैसे ही रसोईघर में भोजन बनता था, राजजी को भोग लगता था या नहीं, उनकी पत्नी पहले ही निकालकर अपने पतिदेव को खिला देती थी। कहती थी कि हमारे तो राजजी ये ही हैं। मंदिर वाले राजजी को बाद में खिलाना। ये मोह है। इसको प्रेम नहीं कह सकते। ये कड़वा सच है और इस कड़वे सचको हम सुंदरसाथ स्वीकार करने के लिए राजी नहीं हैं लेकिन यदि एकांत में बैठकर हम सोचेगें तो ये निश्चित है कि जितना हम संसार से लगाव रखते हैं, उसका दसवाँ हिस्सा भी राजजी से जिस दिन हो जाएगा, राजजी आपके सामने होगें। हर कोई कह देगा कि हम तो राजजी के प्रति भाव रखते हैं, वाणी पढ़ते

हैं, चितवनि करते है। सब कुछ करते हैं, लेकिन सच्चाई यह है। हम 8 घंटे धन कमाने के लिए परिश्रम कर सकते हैं, मित्रों से, सगे संबंधियों से, रिश्तेदारों से कई घंटे गप्पे मार सकते हैं, लेकिन चितवनि के लिए सबको मालूम है सौ बहाने खोज डालते हैं। आखिर यदि हम इतना सब कुछ कर सकते हैं तो राजजी के लिए भी तो दो घंटे दे सकते हैं। दो घंटे नहीं दीजिए, 15 मिनट सबको भुला दीजिए। आप देखिये कि आपके दिल में धामधनी की छवि अंकित होती है कि नहीं लेकिन कोई दिल से उनको याद करे तो। इसलिए तो कहा है– 'जो मन की खटपट मिटे, चटपट दरसन होए।' हमारा मन संसार को देख रहा है। आंखें बंद करके बैठेगें तो भी संसार हमारे मन में तो बसा हुआ है। हम आंखों से संसार को नहीं देख रहे, लेकिन मन की आंखों से तो संसार को देख रहे हैं। हमारे मन में कहीं न कहीं तो संसार बसा हुआ है। इन सब से अलग हो करके जिस दिन हमने अपना दिल राजजी को दे दिया जैसे एक मां का बच्चा सीढ़ी से गिरता है। मां सबको भुला देती है और बच्चे के लिए तड़पती है। अपने बच्चे के लिए उसकी जान हाजिर हो जाती है कि मेरा बच्चा गिरा। पड़ोसी का बच्चा गिरे और कोई विरोधी उसकी हो, ऐसी बहन हो जिससे वह लडती है, उसका बच्चा गिरे तो वो दर्द भी उतना नहीं आएगा। अपने बच्चे के गिरने पर पीड़ा क्यों होती है? क्योंकि रक्त का संबंध होता है कि हमारा बच्चा। लेकिन अपने बच्चे की आह सुनकर जितना हृदय तड़पता है वही तड़प कदाचित् चितवनि में आ जाए, कि राजजी हमारे सामने क्यों नहीं आते, तो राजजी क्यों नहीं आएगें। राजजी कही दूर नहीं बैठे हैं कि उनको हवाई जहाज से उड़कर आना पड़े या विष्णु भगवान की तरह गरुड पर बैठकर आना पड़े। ऐसा नहीं है। 'ऊपर तले अर्स ना कह्या, अर्स कह्या मोमिन कलूब।' मंदिर, मस्जिद, आश्रम तो इसलिए

बनाए जाते हैं कि लोगों को इकट्ठा करके किसी तरह से कुछ अध्यात्म की बातें सुना देनी हैं। हैं तो वो दिल में और अनंत ब्रह्मांडों में जो प्रेम नहीं मिलता, जब उस प्रेम की रसधारा हमारे हृदय मंदिर में बहने लगती है, तो निश्चित है कि धाम धनी के चरन कमल हमारे धाम हृदय में आ जाते हैं। दुनियां क्या कहती है?

'प्रेम ब्रह्म दोऊ एक हैं, सो दोऊ दुनी में नाहें।
पढ़े दोऊ बतावें दुनी में, जो समझत ना सास्त्रों माहें।।'

दुनियां कहती है कि परमात्मा भी इस सृष्टि के कण–कण में समाया है और प्रेम भी समाया है। यही सबसे बड़ी भूल है। जहां सतोगुण है, रजोगुण है, तमोगुण है, वहां प्रेम नहीं, वहां परमात्मा नहीं। परमात्मा त्रिगुणातीत है। प्रेम भी त्रिगुणातीत है और अक्षरातीत सत्व, रज और तम के इस मायावी जगत से परे हैं। हमारे हृदय में प्रेम कब आएगा? जब हमारा हृदय विरह की अग्नि में तड़पने लगे तो सत्व, रज और तम का बंधन अपने आप समाप्त हो जाएगा। जैसे कबीर जी ने कहा है–

'माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।'

कोई व्यक्ति पूजा पाठ करता है, कोई व्यक्ति जप करता है, कोई व्यक्ति तप करता है, कोई व्यक्ति नमाज पढ़ता है। तरह–तरह की पद्धतियां हैं लेकिन हृदय में यदि प्रेम का अंकुर नहीं फूटा तो परिणाम क्या है? वो सारी बंदगी निष्फल चली जाती है। इस संसार में मैंने बताया कि केवल स्वार्थ है। भक्त भगवान के मंदिर में मत्था भी टेकता है तो स्वार्थ के लिए टेकता है। उसे प्रेम नहीं है और जिस दिन उसकी सांसारिक इच्छा पूरी हो जाती है, वो भूल जाता है। अपने परिवार के मोह जाल में ऐसा फंस जाता है कि परमात्मा को याद करने के लिए भी उसके पास समय नहीं मिलता। कल्पना कीजिए, आपको राजजी अनुभव में आने लगे और आपने मांग कर ली कि

राजजी हमको प्रधानमंत्री बना दीजिए। राजजी ने आपको बना दिया। लेकिन पहले जिस तड़प से आप राजजी को याद करते थे, प्रधानमंत्री बनने के बाद आप नहीं करेगें। पूछा जाएगा, कि राजजी को याद करते हैं? क्या कहेगें? क्या करें, कि इतने काम का बोझ आ गया है कि टाइम ही नहीं मिलता। आपको राजजी से प्रेम नहीं था। केवल संसार के पद और प्रतिष्ठा का प्रेम था। संसार में सब स्वार्थ के रिश्ते हैं, स्वार्थ का व्यापार और स्वार्थ की बंदगी। प्रेम सबसे न्यारा, जो केवल देना जानता है, लुटना जानता है, स्वयं को लुटाना जानता है और राजजी से राजजी के दिल के प्रेम के सिवा और कुछ भी नहीं मांगता।

'प्रेम नाम दुनियां मिने, ब्रह्मसृष्टि ल्याई इत।'

धाम धनी कहते हैं कि प्रेम क्या है, धनी का अंग है। जब संसार में अक्षरातीत नहीं है, संसार में कण–कण में माया है, तो भला प्रेम कहां से आ जाएगा? इस मायावी जगत में कभी भी प्रेम नहीं पाया जा सकता। जिस दिल में तमोगुण है, उसमें प्रेम का प्रगटन नहीं। रजोगुण है, आसक्ति हो जाएगी। सतोगुण होगा, तो शुद्ध सात्विक स्नेह मिलेगा। जैसे दो भक्त परमात्मा के ध्यान में बैठे हैं, दोनों एक दूसरे का बुरा नहीं चाहेगें, दोनों एक दूसरे से सच्चा स्नेह करेगें। छल कपट नहीं रहेगा। जब मनुष्य रजोगुण और तमोगुण के बंधन में होता है तो छल कपट राग द्वेष सारे विकारों से भरा होता है। दो व्यापार करने वाले पार्टनर होगें, दोनों एक दूसरे को मात देने की कोशिश करेगें। दो–तीन भाई होगें, सम्पत्ति का बटवारा होगा, उनमें राग द्वेष की खाई बढ़ जाएगी। आप युवावस्था के आकर्षण में देखिये, वर वधु आते हैं, युवावस्था में उनका भाव कुछ और होता है लेकिन जब वो 70 साल की वृद्धावस्था में प्रवेश करेगें, यदि उनके अंदर भक्ति का संस्कार रहेगा, साथ साथ रहेगें, लेकिन उस समय उनका प्रेम केवल हृदय का रहेगा क्योंकि 80 साल तक जाते

जाते शरीर में सुंदरता रह नहीं जाती। उनके अंदर जो आकर्षण होगा, केवल हृदय के भावों का आकर्षण होगा। कदाचित युवावस्था में भी दोनों यदि भक्ति में डूब गए तो उनमें जो आकर्षण होगा, वो दिव्य आकर्षण होगा। मैं देहरादून में, तपोवन, एक स्थान पर गया था। उस स्थान की विशेषता ये थी कि पिता–पुत्र दोनों ने 100 वर्षों से ज्यादा तक एक साथ बैठकर एक शिला पर घोर साधना की थी और वहाँ कोई व्यक्ति अभी भी जाकर कुछ समय साधना कर ले तो उसको पूर्व जन्म की सारी स्मृति आने लगती है। वहां का दिव्य आभा मण्डल ऐसा है लेकिन इतना भयानक स्थान है कि वहां एक तो चारों तरफ कुछ अपराधी प्रवृत्ति के लोग रहते हैं और जानवरों का निवास ऐसा है, पानी की तंगी ऐसी है कि वहां रहना बहुत कठिन हो जाता है। कहने का तात्पर्य क्या है? जब हम रज और तम के घेरे को पार करके सतोगुण अवस्था में आते हैं, तो प्रेम की एक झलक का आभास होने लगता है लेकिन प्रेम हमारे पास तब भी नहीं रहेगा। मीरा, रसखान, सूर, इनमें सतोगुण की अवस्था आ गई थी, त्रिगुणातीत अवस्था इनमें भी नहीं आई थी। प्रेम किसके पास है? परमधाम में है, अक्षरातीत के पास है और उनकी अंगरूपा आत्माओं के पास प्रेम है। आपके मन में संशय होगा कि जो सुंदरसाथ है, 30 लाख, इनमें तो किसी में दिखाई देता नहीं है। ये सच है। हीरा कितना भी कीमती हो और उसको कीचड़ में लपेट दिया जाए, किसी जोहरी के पास जा करके उसको बेचा जाए कि देखो भई, मैं दो लाख का हीरा लाया हूं। वो उसकी चमक न देखे, वो तो मिट्टी के कीचड़ को देखेगा। कहेगा कि कोई पागल आ गया है, इसको बाहर निकालो। जोहरी के पास बेचने से पहले तो हमें उस कीचड़ को हटाना पड़ेगा तब हम हीरे के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। हम सोचते हैं कि हीरे को ले जा रहे हैं। जोहरी तो समझेगा कि

कीचड़ ला रहा है। बस, ये स्थिति है। परमधाम की जो ब्रह्मात्माएँ हैं, उनको मार्गदर्शन नहीं मिला कि वो प्रेम के स्वरूप का ध्यान करें। जो जिसका चिंतन करता है, वैसा ही हो जाता है। मनुष्य अपने विचारों का बना होता है। यदि हमारे विचार उन्नत हैं तो हम दिन पर दिन उन्नत हो जाएगें। यदि हमारे विचारों में नकरात्मकता है, तो निश्चित है कि हम पतन की तरफ चलना शुरू कर देगें। जो ब्रह्म का चिंतन करेगा, वो ब्रह्म के तदोगत हो जाएगा। यदि हम उठते बैठते सोते जागते केवल राजजी का चिंतन करें तो हमारे दिल में राजजी का प्रेम बसना शुरू हो जाएगा। यदि कोई व्यक्ति किसी बुरे व्यक्ति का दिन रात चिंतन करना शुरू करे, तो उसके चित्त में बुरे संस्कार बैठ जाएगें। इसलिए चिंतन किसका हो? केवल अक्षरातीत का। हम रात्रि को सोने से पहले यदि राजजी का ध्यान करके सोएं, सवेरे उठते ही पहला काम राजजी का ध्यान करने का प्रयास करें तो निश्चित है कि हमारे दिल में राजजी के जो भी गुण हैं, प्रेम, आनंद, निर्विकारता सब कुछ हमारे दिल में बसना शुरू हो जाएगें। यदि हमने रात को सोते समय ,खूब पिक्चरें देखीं, गलत–गलत एक दूसरे को मारधाड़ वाली चीजें देखीं, हमारे अंदर भी वही संस्कार पैदा हो जाएगें। इसलिए यदि हम अपने जीवन में वास्तविक प्रेम की झलक पाना चाहते हैं, तो जो प्रेम का सागर है, उसको याद किए बिना कभी भी बिस्तर पर न जाएं और यदि संसार का कोई भी काम करना चाहते हैं तो बिस्तर से उठने के बाद, भोजन बाद में, चाय बाद में, पहला काम धाम धनी को अपने दिल में बसा लेना क्योंकि वो प्रेम का सागर है, वो दिल में रहता है लेकिन हमारी आंखें उसको इसलिए नहीं देख पातीं क्योंकि दोनों के बीच में एक पर्दा है। मैं यहां बैठा हूं, आप नीचे बैठे हैं। दोनों के बीच में एक चादर तान दी जाए और मैं पूछूँ कि आपको मैं दिखाई दे रहा हूं? आप लोग

कहेगें कि नहीं। पूछूंगा क्यों? आप कहेगें कि चादर खडी है, बस इतनी सी बात है। आपके पास ही तो बैठा हूं लेकिन आपकी नजर किस पर है? चादर पर। आप मुझको देखना भी चाहते हैं तो मैं नहीं दिखाई पड़ रहा हूं। उसी तरह से वाणी पढ़कर सुंदरसाथ जानता तो है कि हमारे दिल में राजजी रहते हैं। लेकिन राजजी का स्वरूप जो है, त्रिगुणातीत है। क्या हम उस त्रिगुणातीत अवस्था में आ पाते हैं? क्या हमारे अंदर वो प्रेम की रसधारा बह पाती है? कहीं न कहीं हमारा मन शरीर और संसार की तरफ अटका रहता है। ज्ञान दृष्टि से जानते हैं, मूल मिलावा कैसा है। ज्ञान दृष्टि से हम जानते हैं, परमधाम कैसा है लेकिन न परमधाम नजर आता है, न राजजी श्यामाजी नजर आते हैं। हम एक एक अंगों का वर्णन भी कर देते हैं क्योंकि हमने वाणी में पढ़ रखा होता है कि राजजी के गले में इतने हार हैं, श्यामाजी के गले में इतने हार हैं, नाखून ऐसे हैं, होंठ ऐसे हैं, गाल ऐसे हैं। सब कह देगें। एक सांस में बोल जाएगें। पूछा जाए कि दिखता है? कहेगें कि नहीं। क्यों नहीं दिखता है? क्योंकि हम रज और तम के बंधन को छोड़ नहीं पाए। चुंबक है। लोहे को कब खींचेगा? लोहे के टुकड़े के ऊपर कीचड़ लपेट दीजिए, तो चुंबक क्या करेगा? चुंबक तो नहीं खींच सकेगा। उस कीचड़ को हटाना पडेगा। संसार की तरफ देखना बंद करना पडेगा। रज और तम के बंधन को हटाकर पहले सतोगुण में आना पड़ेगा और सतोगुण की अवस्था में जैसे–जैसे विरह की अग्नि धधकती जाएगी, हमारे हृदय मंदिर में प्रेम की रसधारा बहेगी और वही प्रेम हमें धनी के चरणों में ले जाएगा। इसीलिए कहा है–

'पिउ नेत्रों नेत्र मिलाइए, ज्यों उपजे आनन्द अति घन।
तो प्रेम रसायन पीजिए, जो आतम थें उतपन।।'

प्रेम ऐसा रसायन है जो हमारे जीवन में आनंद का संचार करता

है। कल्पना कीजिए, आपको एक हीरे मोती के महल में रख दिया गया है। आपको अकेले छोड़ दिया गया है। आप न किसी से बात कर सकते हैं, न किसी को देख सकते हैं, परमात्मा का भी ध्यान करने की आपको स्वीकृति नहीं है। अच्छे अच्छे भोजन रख दिए जाए तो क्या आप रहेगें? आपको तो यही लगेगा कि हीरे मोती का महल नहीं, ये तो भूत घर है। जल्दी से भागने का आप प्रयास करेगें। चेतन क्या चाहता है? चेतन चाहे मनुष्य का चेतन हो, देवी देवता का चेतन हो, पशु पक्षी का चेतन हो, कीड़े मकोड़ों का चेतन हो, वो केवल प्रेम चाहता है, आनंद चाहता है और वो संसार में मिलता नहीं, इसीलिए दुखी होता है। और मिलेगा कहां? केवल अक्षरातीत के चरणों में। प्रेम को पाने के लिए आपने हीरे मोती के महलों का मोह छोड़ दिया, शरीर का मोह छोड़ दिया, शरीर के बंधनों से यदि आप परे हो गए, तो आपको अपनी आत्मा के धाम हृदय में सारा परमधाम नजर आने लगेगा क्योंकि आपने अपने हृदय में अभी तक संसार को बसा रखा था। याद रखिए, आप कितने भी बड़े विद्वान बन जाइए, लेकिन यदि इस विद्वता का फल आप प्रतिष्ठा में लेना चाहते हैं, आप भक्ति करके संसार में अपनी प्रतिष्ठा फैलाना चाहते हैं, तो आपने तो अपने प्रेम को बेच दिया है। प्रेम से केवल अक्षरातीत को पाइए। संसार की कामना नहीं। यदि आप चमत्कार दिखा करके संसार में वाह–वाह लेना चाहते हैं, कि देखो, मैं इतना बड़ा सिद्ध हो गया हूं, तो आपने अपने अक्षरातीत को पीछे कर दिया, संसार को सामने ला दिया और यही चीज सबसे बड़ी बाधा हो जाती है। धाम धनी ने कहा है–

'प्रेम नाम दुनियां मिने, ब्रह्मसृष्टि ल्याई इत।
ए प्रेम इनों जाहेर किया, न तो प्रेम दुनी में कित।।'

संसार में आज तक प्रेम था ही नहीं। ब्रह्मसृष्टियां ब्रज में आईं

तो प्रेम की एक झलक संसार को दिखाई दी। इसके पहले नहीं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम अयोध्या में अवतार लेते हैं, विष्णु के अवतार माने जाते हैं, पौराणिक मान्यता से। एक आदर्श जीवन प्रस्तुत करते हैं। गोपियों और श्री कृष्ण में त्रिगुणातीत एक मधुर संबंध है, परमधाम का और एक पवित्र प्रेम है। कृष्ण बांसुरी बजाते हैं तो गोपियां भागी आती हैं। आत्मा का आकर्षण है। कृष्ण ग्वाल बालों के साथ खेलते हैं तो कोई बंधन नहीं है। उनका जूठा भी खाते हैं। जिस तन में अक्षरातीत की शक्ति लीला कर रही हो और ग्वाल बाल का वो जूठन खाएं, ये कितने बड़े आश्चर्य की बात है। गोपियां भी कहती हैं, कि कन्हैया! हम तुमको मक्खन देगीं यदि तू नाचेगा तो! और कृष्ण नाचते हैं। एक प्रेम की पुकार है। दिव्य प्रेम, जिसमें कोई चाहत नहीं है। और इस पवित्र प्रेम को पाने के लिए न जाने कितने जन्मों तक कठोर साधना करनी पड़ती है। बड़े बड़े ऋषि मुनि निराकार को पार नहीं कर पाए। लेकिन जब बांसुरी बजी तो सखियां एक पल की देरी किये बिना निराकार को पार कर के बेहद में पहुंच गयीं। भक्ति का उद्देश्य क्या होता है? नारद भक्ति सूत्र में लिखा है–भक्ति किसको कहते हैं? 'परम प्रेम का स्वरूप'। आप यज्ञ कर रहे हैं, आहुति दे रहे हैं और गुस्से में पड़ोस में बैठे व्यक्ति को फिटकार रहे हैं। फिर वो कैसी भक्ति? वो तो कर्मकांड की भक्ति हो गई। इस्लामिक इतिहास गवाह है, कि नमाज पढ़ रहे हैं, कोई जाकर के बम फोड़ देता है। कई खलीफाओं की हत्या कैसे हुई? नमाज के समय जैसे ही उन्होंने गर्दन झुकाई, विरोधी ने उनकी गर्दन काट दी। वो कैसी बंदगी? एक व्यक्ति नमाज में सिर झुका रहा है, दूसरा उसकी गर्दन काट रहा है। पुजारी जी पूजा कर रहे हैं, कोई नीची जात का व्यक्ति आ गया तो शोर मचाने लगे कि हमारे ठाकुर जी का मंदिर अशुद्ध कर दिया। एक बार जगजीवन बाबू काशी

विश्वनाथ मंदिर में चले गए, पण्डों ने सारा मंदिर धो डाला कि शूद्र इस मंदिर में घुस आया है, मंदिर अशुद्ध हो गया है। यदि भगवान को भी छूत लगने लगती है, तो कैसा भगवान है? यदि छोटी जाति के इंसान के आने से भगवान भी अशुद्ध होने लगे, मंदिर अशुद्ध होने लगा, तो वो मंदिर और भगवान नहीं। साबुन में कभी मैल नहीं लगा करती। लेकिन ये कैसी दृष्टि है? सांसारिक दृष्टि। प्रेम नहीं है। प्रेम मीराबाई के पास था। रविदास क्या थे? जूता बनाते थे। मीरा ने जाति नहीं देखी, सब जगह से खोज करके थक गई थी कि मुझे कोई गुरू तो मिले जो मुझे सच्ची राह दिखाए। रविदास को उसने माना और मीरा ने अपने हृदय का स्नेह समर्पित कर दिया रविदास को। रविदास जी ने भी सच्ची राह दिखाई। कहने का तात्पर्य क्या है? प्रेम वो अमृत है, प्रेम वो रसायन है, जिसके हृदय में धनी का प्रेम आ जाएगा उसके हृदय में निर्विकारता आ जाएगी।

'एक रस होइए इस्क सों, चलें प्रेम रस पूर।
फेर फेर प्याले लेत हैं, स्याम स्यामाजी हजूर।।'

सुंदरसाथ कहते हैं, राजजी का दर्शन नहीं होता। 'एक रस होइए', एक रस होने का मतलब क्या? एक चरण में सारी वाणी को भर दिया है धनी ने। वही हमसे नहीं हो पाता। राजजी के प्रति दहशत की भावना है कि राजजी को हमने भोग नहीं लगाया, आज पाठ नहीं किया, राजजी हमारा नुकसान न कर दें। आप एकरस तो नहीं क्योंकि आपने अपना दिल राजजी को दिया ही नहीं। आपने दिल अपना या तो पति को दे रखा है, पत्नी को दे रखा है, भाई को दे रखा है, पिता को दे रखा है, या पुत्र को दे रखा है। राजजी को दिल नहीं दिया। राजजी तो प्रेम के सागर हैं, वो आपके दिल में बसे हुए हैं, वो आपका क्यों नुकसान करेंगें? मैंने कई बार दृष्टांत दिया है,– पति–पत्नी जिनका अभी विवाह हुआ था, परिणय सूत्र में बंधे थे। नौका पर

जा रहे थे। पति ने मजाक में कहा, तुम मरने के लिए अभी तैयार हो जाओ, रिवालवर उसके पास थी। रिवालवर तान दिया। पत्नी हंसने लगी। पति कहता है कि तुम हंस रही हो। उसने बनावटी गुस्से में कहा' मैं कह रहा हूं कि तू अभी मरने के लिए तैयार हो जा, तुझे मालूम है कि इसमें 6 गोलियां भरी हैं। और ये 6 गोली तुम्हारे सीने को चीर देगीं। पत्नी और जोर जोर से हंसने लगीं क्योंकि उसको मालूम था कि मेरा पति मुझे मार नहीं सकता है। हमको राजजी पर विश्वास ही नहीं होता। हम सोचते हैं कि राजजी हमसे नाराज होकर बैठ जाएगें। हमारा विनाश कर डालेगें क्योंकि हमने राजजी से अपनापन नहीं रखा। हमने दिल किसी और को दे रखा है, राजजी को नहीं दिया है। हमको तो वही शरीयत की बंदगी दिखाई गई है। बार बार साष्टांग लेट जाना। बार–बार कान पकड़ना। हमारे समाज के प्रमुख मंदिरों में चले जाइए, मैं नाम नहीं बताऊंगा, वहां जो भी मत्था टेकता है, बार–बार कान पकडेगा। मुझे हंसी आती है कि ये तो दुनियां वालों की भक्ति बेचारे कर रहे हैं, कान पकड़ रहे हैं, अपने गुनाहों की माफी मांग रहे हैं। स्वलीला अद्वैत में कौन किससे माफी मांगेगा? स्वलीला अद्वैत में एक ही शर्त होती है, अपने को भूल जाओ और अपना दिल दे दो। दुनिया इसके लिए तैयार नहीं होती। वो मन्नत मांगा करती है और इन्हीं मन्नतों के जाल में वो अपने प्रेम को खो बैठती है। ज्ञान तो केवल रास्ता बता देगा कि स्वलीला अद्वैत में, परमधाम में सबका एक स्वरूप है लेकिन ये मंजिल तो बिना प्रेम के प्राप्त हो ही नहीं सकती। यदि आपके हृदय में प्रेम की रसधारा नहीं बही, तो राजजी का दीदार आपको नहीं हो सकता चाहे 18, 758 चौपाइयां आप कंठस्थ कर लें, सारे वेद शास्त्र कंठस्थ कर लें। राग द्वेष की परिधि से परे हुए बिना कभी भी हृदय में प्रेम की रसधारा नहीं बह सकती है और सारे ज्ञान का, सारी भक्ति

का एक ही सूत्र है कि अपना दिल राजजी को दीजिए। और ये ही करना सबसे कठिन होता है। बड़े से बड़े महात्मा के लिए, बडे से बडे ज्ञानी के लिए और तो और जो परमहंस हो जाते हैं, उनके लिए भी पूरी तरह से कठिन होता है अपना दिल देना लेकिन वो मिलता तभी है। यदि राजजी का पल भर दीदार भी होगा, तो तभी होगा जब आप सबको भुलाकर अपना दिल राजजी को दे देगें। इसके पहले नहीं होगा। हां, आप पाठ रखेगें, आपकी इच्छाएं पूरी हो जाएगीं, मेहेर सागर का पाठ करेगें, राजजी से आप जो कुछ मांगोगे माया का, ये सब मिल जाएगा। वो नहीं मिलेगा। आपके दिल में रहेगा। लेकिन आप को दीदार नहीं देगा क्योंकि वो देख रहा है कि इसने मुझको समर्पण कितना किया है। इसको कहते हैं कुरान की भाषा में साद करना, रिझाना। साद करने का मतलब? खुद को मिटा देना।

'मैं लिख्या है तुम को, जो एक करो मोहे साद।
तो दस बेर मैं जी जी कहूं, कर कर तुमें याद।।'

संसार में बड़े बड़े भक्तों की लाइने हैं। आप देखेगें, कई परिक्रमा करने वाले कितने जोर शोर से परिक्रमा करते हैं, कोई लेट–लेट कर परिक्रमा करते हैं, कोई हमेशा माला का जप करते रहते हैं, कोई सेवा पूजा बहुत बढ़िया से करते हैं कोई तारतम का पाठ करते रहते हैं, लेकिन किसी ने अपना दिल नहीं दिया होता है। एक चरण में कह दिया,–

'ल्याओ प्यार करो दीदार'।

प्रेम चाहिए। एक रसता। हमारे और धनी के बीच में किसी भी तरह का पर्दा न हो। दासी क्या सोचती है कि मेरा मालिक रूठ जाएगा तो मुझे वेतन नहीं देगा। मेरा गुजारा कैसे होगा? ये संसार की भक्ति है। पतिव्रता क्या सोचती है? कि पति तो मेरा हृदय है। वो मेरे से रूठ नहीं सकता। मेरा रोम रोम तो उसका

है। बस, प्रेम लक्षणा भक्ति में और दास भक्ति में इतना ही अंतर है। दास भक्ति भय के साये में होती है। प्रेम लक्षणा भक्ति सर्वस्व को मिटा कर के होती है। हमें जरा भी कष्ट होता है, राजजी पर बौछार करने लगते हैं, कैसे राजजी हैं, हमारी तरफ देख नहीं रहे हैं, हमें इतना कष्ट मिल रहा है। यही तो हमारी भूल है। आपके हृदय मंदिर में वो रहता है, आपको 24 घंटा देखता है, आप तो 24 घंटे में एक घंटा भी मुश्किल से निकालते हैं। आपने दिल तो किसी और को दे रखा है। आपको जो माया में ठुकराहट मिल रही है, केवल इसलिए मिल रही है कि अपनी निष्ठा को और परिपक्व कीजिए और जब ये निष्ठा समर्पण में बदलेगी, समर्पण प्रेम में बदलेगा तो उसी प्रेम के आगोश में आपके हृदय मंदिर में अहनिस रहने वाला अक्षरातीत माया के परदे को हटा देगा।

'ए प्रेम इनों जाहेर किया, न तो प्रेम दुनी में कित।।'

संसार में तो प्रेम था ही नहीं। प्रेम के लिए न जाने कितने ग्रंथ लिखे पडे हैं। लेकिन दुनियां प्रेम को नहीं जानती।

'प्रेम बसत ब्रह्मसृष्ट में, जो खेले स्वरूप ब्रज रास।'

अक्षरातीत में प्रेम है। अक्षरातीत की अंगनाओं में प्रेम है लेकिन परमधाम की आत्मायें जब दुनियां में आईं तो दुनियां वालों को देखकर वो भी नवधा भक्ति में फंस गईं। वो भी अब माला का जप करती हैं। वो भी पूजा पाठ में लगी रहती हैं। ये भी नहीं सोचती कि रात को सोते समय हम अपने प्रीतम को तो दिल में बसा लें। कयामतनामा में एक चौपाई आती है, 'रातों करें उजागरा'। संसार सो रहा होता है और परमधाम की आत्मा सबसे नजर बचाकर अपने प्रियतम के ध्यान में बैठी है। कभी शोर नहीं मचाती कि देखो! दुनियां वालों मैंने एक करोड़ मंत्र का जप कर लिया है। दुनियां में कोई साधु, महात्मा तप करते हैं, सारे इलाके के लोगों को इकट्ठा किया जाता है कि 14 साल

का व्रत टूटा है महाराजी का, आज हवन होगा। सारा भंडारा होता है, लाखों लोग इकट्ठे होते हैं। जय–जयकार लगाया जाता है। किसका? भक्ति का। परमधाम की ब्रह्मसृष्टि ऐसा नहीं करेगी। क्योंकि वो प्रेम को किसी भी कीमत पर संसार में बेचना नहीं चाहेगी। प्रेम उसकी अनमोल संपदा है। वो सबसे नजर बचाकर, सबसे छिपाकर अपने दिल में धनी को याद करेगी। हां, संसार के रिश्ते को निभाएगी, लेकिन संसार का होकर नहीं। एक औपचारिकता पूरी करनी होती है। जैसे किसी धर्मशाला में रहते हैं, रात भर समय गुजारना होता है। सवेरे मंजिल पे चल देना होता है। उसी तरह से माया की दुनियां में हम आए हैं, परिवार में रहना होता है, धन कमाना होता है। उन सारी औपचारिकताओं को परमधाम की ब्रह्मसृष्टि पूरी करेगी लेकिन 24 घंटे उसका दिल केवल राजजी के नख से शिख तक के श्रृंगार में रहेगा। यदि हमारे साथ ऐसा होता है तो समझ लीजिए कि जागनी के पथ पर आपकी गाड़ी बहुत अच्छी दिशा में चल रही है। यदि आपके दिल में संसार बसा है तो कहीं न कहीं हमसे भूल हो रही है। हमारी गाड़ी के पहिए पटरी से नीचे उतर रहे हैं।

संसार बदल रहा है, आपका शरीर भी बदलता रहेगा, मनोभाव भी बदलते रहेगें। एक अक्षरातीत का प्रेम है जो कभी नहीं बदलता। 'परिकरमा' के अंदर बहुत कुछ रहस्य भरा है। अब आपके ऊपर है कि परिकरमा ग्रंथ के एक–एक चरण के भावार्थ को कितना आत्मसात् करते हैं। जिस तरह सागर सिनगार की वाणी आपको झकझोरती है परिकरमा की वाणी भी आपको झकझोरेगी और यदि आपने दिल की आंखों से परिकरमा ग्रंथ की टीका पढ़ ली, तो निश्चित रूप से ऐसा समय आएगा कि रात्रि को सोने से पहले आप जरूर ध्यान में बैठना पसंद करेंगे।

तिन सब जिमी में बस्ती, कहूं पाइए नहीं वीरान। D
पातसाही पसुअन की, और जानवरों की जान।।

'ए जो जिमी अर्स हक की'

अक्षरातीत धाम धनी की ये परिक्रमा की वाणी हमें परमधाम की तरफ ले चल रही है। हमारा मानवीय मस्तिष्क परमधाम को कैसे आत्मसात कर सके, इसके लिए परिक्रमा ग्रंथ में जैसा हमने इस संसार में देखा है, उसी के तदोगत वर्णन करने का प्रयास किया गया है। अंतर केवल इतना ही है कि इस माया की हर वस्तु नश्वर है, जबकि परमधाम की हर वस्तु अखंड। यहां की हर वस्तु जड़ है, वहां की हर वस्तु चेतन है। यहाँ की प्रत्येक वस्तु में राग, द्वेष, घृणा की अग्नि जलती है जबकि वहाँ की प्रत्येक वस्तु अति नूरमयी है, प्रेममयी है और आनंदमयी है। इस संसार में हमें नदियाँ देखने को मिलती हैं, पर्वत मिलते हैं, पशुपक्षी मिलते हैं, स्त्री–पुरूष मिलते हैं, तरह–तरह के सुखों के साधन मिलते हैं जो स्वप्नमयी हैं। इसी के समकक्ष यदि कहा जाए ऐसे ही परमधाम है, वहाँ भी नूर से भरपूर यमुना जी हैं, मानिक पहाड़, पुखराज पहाड़ है, पशु पक्षी हैं, तो शायद परमधाम का जो कुछ सौन्दर्य है, प्रेम है, आनंद है, उस सागर की एक बूँद को हमारी बुद्धि ग्रहण कर सके। बस इतनी सी बात है। परमधाम के पशु–पक्षियों की जब बात की जाती है तो बुद्धि ये जरूर टटोलती है कि क्या परमधाम में भी पशु पक्षी रहते हैं। वो पशु पक्षी नहीं हैं।

'और खेलौने जो हक के, सो दूसरा क्यों केहेलाए।
एक जरा कहिए तो दूसरा, जो हक बिना होए इफ्तदाए।।'

परमधाम में एक चीज बाँध लीजिए, अक्षरातीत के सिवाय कोई भी दूसरा नहीं है। हमारे समाज में विवाद चला करता है, परमधाम में बाँसुरी है कि नहीं, राधा जी हैं कि नहीं। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ कहता है। सच क्या है? हमारी मानवीय

बुद्धि यहाँ के पदार्थों को जब देखती है, वैसे परमधाम में भी कल्पना करती है। अक्षरातीत का स्वरूप ही असंख्य रूपों में क्रीड़ा कर रहा है। उसकी कोई सीमा नहीं। जैसे अभी कह रहे हैं,
'ए जो जिमी अर्स हक की, सो वीरान क्यों कर होए।'
कहीं भी वीरानगी नहीं है। हमको मोटे तौर पर बताया जाता है कि बारह हजार सखियाँ मूल मिलावे में बैठकर इस खेल को देख रही हैं। जो चर्चनी के विशेषज्ञ हैं, वो जानते हैं कि पूरे रंगमहल के अंदर कितनी हवेलियाँ हैं। यह रंगमहल तो बहुत छोटा है। इस रंगमहल को मानिक पहाड़ के एक थंभे में बसाया जा सकता है। और सारा मानिक पहाड़ बड़ी रांग की हवेलियों के एक थंभे में आ जाएगा। आप कल्पना कीजिए, परमधाम में हवेलियों की संख्या कितनी होगी? अनंत। आप ये मत समझ लीजिए कि केवल मूल मिलावे के अंदर ही सखियाँ बैठी हुई हैं और रंगमहल की सभी हवेलियाँ खाली हैं। परमधाम का चप्पा–चप्पा आबाद है और आबाद रहेगा। जैसे चावल के दाने को दबाकर के पता कर लिया जाता है कि चावल पका है कि कच्चा है। सारे दानों को दबाने की आवश्यकता नहीं पडती। उसी तरह से हमारा मानवीय मस्तिष्क ये ग्रहण कर ले कि परमधाम में अनंत सखियाँ हैं, उसके लिए बारह हजार का एक नमूना बस दे दिया गया है। लेकिन माया की दुनिया में केवल बारह हजार ही हैं। क्योंकि अनंत की नज़र को झेलने की सामर्थ्य इस कालमाया के ब्रह्मांड में नहीं है। आपका यह कालमाया का ब्रह्मांड बेहद के सामने एक बिन्दु है और पूरा बेहद मंडल परमधाम के सामने एक बिन्दु है। उस अक्षरातीत की कोई सीमा क्या मापेगा? हमें अपने मन में से गाँठ निकाल देनी चाहिए कि परमधाम में केवल बारह हजार सखियाँ हैं जो मूल मिलावे में बैठी हैं लेकिन यदि ऐसा नहीं कहा जाएगा तो हम उतना ही घबरा जाएँगें। जैसे एक दृष्टांत दिया जाता है।

सागर का एक मेंढक आया, कुँए पर बैठ गया। उसने देखा कि कुँए के अंदर भी मेंढक है। कुँए के मेंढक ने पूछा कि तुम कहाँ से आए हो। कहा, कि सागर से आया हूँ। पूछा, कि सागर कितना बड़ा होता है। कहा, कि बहुत बड़ा, मैं कैसे बताऊँ। वो अनंत है। कुँए का मेंढक छलाँग लगा के बोला, क्या इतना बड़ा। कहता है कि नहीं, इससे भी बड़ा। वो दो छलाँग लगाया, कहा कि इतना बड़ा। कहा, कि नहीं इससे भी बड़ा। पूरे कुँए के अंदर परिक्रमा करके आया, कहा कि इतना बडा। कहा, कि ये तो कुछ भी नहीं है। वो तो अनंत है। वो कहेगा कि तुम पागल हो, तुम्हारी बात झूठी है। वैसे ही अनंत परमधाम को धामधनी ने हमारी बुद्धि में बाँधने के लिए कह दिया है कि बारह हजार सखियाँ मूल मिलावे में बैठी हैं। परमधाम का कण–कण अक्षरातीत को अंगना भाव से ही रिझाता है। वे पशु–पक्षी इस दुनियां के पशु पक्षी नहीं है। अभी, रास्ते में एक विचित्र दृश्य देखने को मिला। बिचारे ये झोडे, जो भैंस के बच्चे होते हैं, बुग्गी खींचते हैं, उनके ऊपर तक लदा हुआ था गन्ना और जब झोडा नहीं चलेगा, तो क्या करेगा? डंडे की मार खाएगा। जिंदगी भर बोझ ढोएगा, बूढ़ा हो जाएगा। कसाईखाने में चला जाएगा और उसको मार कर के इंसान खा जाएगा। यही तो पशु जीवन की कहानी है। परमधाम के पशु, पशु नहीं है। जिस तरह से सखियां धामधनी को रिझाती हैं, उसी तरह से पशुपक्षी भी धाम धनी को रिझाते हैं। शरीर की कोई मर्यादा नहीं है। भाव विह्वल शरीर है। आकृति से प्रेम का कोई रिश्ता नहीं। जब हम चितवनि करते हैं, तो हमको बताया जाता है कि अंगना भाव लेना पड़ेगा। तो, मैं समझता हूं कि 99 क्या 99.99 के मन में यह संशय होता है, कि हमारा पुरूष शरीर है, अंगना भाव कैसे आएगा? अंगना भाव का तात्पर्य है माधुर्यता। अहंकार का लय। समर्पण की पराकाष्ठा। कबीर जी ने कहा है, 'मैं तो पिया की

बावरिया' और कबीर जी तो दाढ़ी रखते थे। वो अंगना भाव कहां से लाए? समर्पण अंगना भाव में ही आता है। वात्सल्य भाव में समर्पण नहीं आ सकता। सखी भाव में समर्पण नहीं आ सकता। पिता–पुत्र के भाव में समर्पण नहीं आ सकता। जहां केवल 'तू' रह जाए, 'मैं' नहीं, समझ लेना चाहिए उसी को अंगना भाव कहते हैं। जहां तक आपको अपने शरीर का आभास है, वहां तक अंगना भाव नहीं है। अहम् प्रधान पुरूष होता है, नारी समर्पण प्रधान होती है। जहां हमारे से शरीर छूट जाए, संसार छूट जाए, इस संसार में हमने आज तक क्या कुछ पाया है, सब भूल जाएं, उसको कहते हैं समर्पण और तभी समाधि की प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं। मनुष्य लाखों साल तक गुफा में बैठ कर ध्यान करता रहे, तब भी उसके अंदर समर्पण की भावना नहीं आ सकती। परमधाम के पशु–पक्षी लीला रूप में है। 'पशु पक्षियों की पातसाही' का ये प्रकरण है। इसमें दर्शाया गया है कि पशु पक्षियों का स्वामित्व क्या है? वो इस दुनिया के पशु पक्षी नहीं है जिसको बुढ़ापे में कसाईखाने में भेज दिया जाता है। उनकी सुदंरता में, उनके प्रेम में रंचमात्र भी कमी नहीं है। उनको यदि ऐसा लगे कि राजजी का दीदार नहीं होगा, तो उसी क्षण लगेगा कि प्राण छोड़ देगें। परमधाम में कोई मरेगा नहीं लेकिन उनकी स्थिति बेहोशी जैसे हो जाती है। वाणी का ज्ञान ग्रहण कर के भी हमारे अंदर विरह नहीं। हम विरह की बातें करते हैं, विरह के नाम पर आंसू भी बहा लेते हैं लेकिन हमारे अंदर परमधाम के पशु पक्षियों का करोड़वां भी प्रेम नहीं। और ये परमधाम के पशु पक्षी हमारे ऊपर हंस रहे हैं। कहने का तात्पर्य क्या है ? परमधाम के पशु पक्षियों के रूप में स्वयं अक्षरातीत लीला कर रहे हैं। अक्षरातीत ही सभी रूपों में हैं।

'न अर्स जिमिएं दूसरा, कोई और धरावे नाउ।
ए लिख्या वेद कतेब में, कोई नाहीं खुदा बिन काहूं।।'

परमधाम में अक्षरातीत के सिवा कोई भी दूसरा नहीं है। अक्षरातीत ही सभी रूपों में लीला कर रहे हैं। वही श्यामाजी बने हैं, वही सखियाँ बने हैं, वही परमधाम के 25 पक्ष हैं, वही खूब खुशालियाँ हैं। इसलिए परमधाम का जर्रा जर्रा आबाद है। ये न समझ लीजिए कि सब सखियाँ आकर मूल मिलावे में बैठ गई हैं और पूरा रंगमहल सूना हो गया। इस दुनियां के हिसाब से हमको समझाया गया है कि खूब खुशालियाँ कहाँ रहती हैं? पुखराज के बंगलों में रहती हैं, बड़ी रांग की हवेलियों में रहती हैं और रंगमहल में केवल सखियां रहती हैं। नौंमी भोम खाली, आठवी, सातवीं, छठी, पांचवी, चौथी, तीसरी खाली और पहली भूमिका की केवल मूल मिलावे के अंदर ही सखियां हैं, ऐसा नहीं है। जर्रा जर्रा, कहीं भी देखेगें, सब कुछ अनंत है। जैसे आप सागर के किनारे खडे हो जाइए, किसी लहर को देखना है, तो आप कितनी लहरों को देख सकते हैं? सागर में तो अनंत लहरे हैं। आप की नजर एक क्षेत्र विशेष में जाएगी। दो–चार, पचास, सौ लहरों को देख सकते हैं। अनंत सागर की लहरों को तो आप नहीं देख सकते। चांदनी रात में आप एक चंद्रमा को देखेगें। इस ब्रह्मांड में तो असंख्य चंद्रमा हैं, असंख्य तारे हैं, कहां तक नजर जाएगी लेकिन जिस एक चंद्रमा को देखेगें, उसी का तो वर्णन किया जाएगा। बस इतनी सी बात है। मूल मिलावे में बैठी हुई सखियों को दर्शाकर के बताया जा रहा है कि मूल मिलावे में परमधाम की आत्मायें बैठी हुई हैं। अन्यथा परमधाम की किसी भी गणना को आप सीमा में बांध नहीं सकते।

'अबादान हमेसगी, आराम बिना नहीं कोए।।'

परमधाम की संपूर्ण धरती हमेशा आबाद रहने वाली है। कहीं भी कमी नहीं आ सकती। सौंदर्य कितना है? अनंत। प्रेम कितना है? अनंत। आनंद कितना है? अनंत। संख्या कितनी है? अनंत। राजजी के दिल में भी अनंत प्रेम है, श्यामाजी के दिल में

भी अनंत प्रेम है, सखियों के दिल में भी अनंत प्रेम है। उतना ही प्रेम खूब खुशालियों के अंदर है और उतना ही प्रेम पशु पक्षियों के अंदर भी है और उतना ही प्रेम धरती के एक एक कण के अंदर है क्योंकि वहां की धरती भी अंगना भाव से धनी को रिझाती है। वहां की हवा रिझाती है, वहां का आकाश रिझाता है, वहां की चांदनी रिझाती है, एक एक पत्ता, एक एक वृक्ष, एक एक घास के अंदर वही अनंत प्रेम भरा हुआ है। हमें माया की दृष्टि से कभी भी परमधाम का मूल्यांकन नहीं करना चाहिए।

'अखंड आराम सब में'

परमधाम में क्या है? अखंड आराम। आराम का अर्थ हम क्या समझते हैं इस संसार में। थके मांदे हैं, कुछ लेट गए। कहते हैं कि हम आराम करने जा रहे हैं। यानि संसार को भुलाकर अपने में समाहित जब हुआ जाता है, तो उसको कहते हैं आराम करना। और उस अपने में डूबने से आनंद मिलता है। उसको कहते हैं आराम। परमधाम में हर कोई किसमें डूबा हुआ है? राजजी में। हर कोई आशिक है राजजी का। चाहने वाला आशिक, प्रेमी। और जिसको चाहा जाता है, वो है प्रेमास्पद, वो है माशूक। परमधाम का एक एक कण राजजी से प्रेम करने वाला है और राजजी परमधाम के जर्रे जर्रे से प्रेम करने वाले हैं क्योंकि राजजी के ही दिल का स्वरूप है सम्पूर्ण परमधाम, श्यामाजी, सखियां, महालक्ष्मी। कण–कण उन्हीं का स्वरूप है। इसीलिए ये सभी राजजी को चाहते हैं और राजजी इनको चाहते हैं। सब एक दूसरे में डूबे हुए हैं।

'सुख देऊं सुख लेऊं' अक्षरातीत का काम है सुख देना। किसको? अपनी अंगनाओं को, सम्पूर्ण परमधाम को। क्योंकि वो आनंद के स्वरूप हैं, इश्क के स्वरूप हैं। 'सुख लेऊं', अक्षरातीत को सुख लेने की क्या आवश्यकता है? लेकिन नहीं। प्रेम में, प्रेम देना भी पडता है, प्रेम लेना भी पडता है। ताली बजती है, तो

दोनों हाथों का संयोग होता है। उसी तरह से अक्षरातीत अपने हृदय का प्रेम लुटाते हैं, आनंद लुटाते हैं, तो सखियों को भी प्रेम लुटाने में आनंद मिलता है। इसी को कहते हैं,

'सुख देऊं सुख लेऊं, सुखमें जगाऊं साथ।
इंद्रावतीको उपमा, मैं दई मेरे हाथ।।'

'अखंड आराम सब में, चल विचल इत नाहें।'

'चल विचल का तात्पर्य क्या होता है? कोई वस्तु आनंदमयी हो लेकिन बाद में अच्छी न लगे। यौवन में जो चेहरा दमकता है, बुढ़ापे में वो सौंदर्य चला जाता है। ये सूर्य आज से कुछ अरब वर्ष पहले नहीं था, कुछ समय के बाद ये सूर्य नहीं रहेगा। ये दहकता सूरज विलीन हो जाएगा, प्रकृति की गोद में समा जाएगा। कुछ पता नहीं। इस सूर्य जैसे असंख्य सूर्य हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगें। मनुष्य की सोच एक बहुत छोटे दायरे को लेकर चलती है। आज का मानव इतना तंगदिल हो गया है कि उस बेचारे को तो पता ही नहीं कि उसने मानव जीवन पाया है तो किसलिए पाया है? सवेरे उठता है, कोई अगरबत्ती जलाएगा, कोई पूजा पाठ करेगा। फिर काम पर निकल जाएगा क्योंकि ये पापी पेट का सवाल है। शाम को थका मांदा आएगा, खाएगा, पिएगा, कुछ टी वी देखेगा, फिर सो जाएगा। फिर सवेरे उठकर के उसको काम पर लग जाना है। नहीं करेगा तो खाएगा क्या? उसको कहां ये सोचने के लिए समय है कि ये संसार क्यों बना? हम यहां क्यों आए हैं? हमारी उम्र का एक–एक पल जो बीता जा रहा है, क्या फिर हमें दोबारा मिलने वाला है? या आने वाले समय में हमें क्या करना है। कल्पना कीजिए, हमारी पृथ्वी जैसी असंख्य पृथ्वियों का जो स्वामी है, कौन है? नारायण। नारायण का भी स्वामी कौन है? अनंत शक्ति वाला अक्षर ब्रह्म। और अक्षर ब्रह्म का भी स्वामी कौन है? वो अक्षरातीत। हम उसकी प्रियतमा हैं, वो हमसे प्रेम करता है।

वो हमारी आत्मा को महामति जी के धाम हृदय में बैठ कर के जगा रहा है। अपनी वाणी सुना रहा है। परमधाम की आत्मायें उसकी वाणी की आवाज को सुनती हैं, वाणी का चिंतन करती हैं, अपने हृदय का तार उससे जोडती हैं और उसको भी अपने ही समकक्ष खडा कर लेती हैं। हम एक मानव तन का दायरा लेकर खडे हैं। इस मानव तन की मर्यादाएँ हैं। ये बूढ़ा होगा, रोग ग्रस्त होगा और कभी न कभी इस शरीर का परित्याग कर देगा। लेकिन यदि हम अपनी परात्म की नजर से देखें तो लगेगा कि हम कौन हैं? हम इस संसार के राग द्वेष के बंधनों में बंधे हुए कोई कठपुतली नहीं है, बल्कि हमारा वो अस्तित्व है, जो अक्षरातीत का अस्तित्व है। हम उसके हृदय की आहलादिनी शक्ति हैं। हम उसके हृदय में विहार करते हैं, वो हमारे हृदय में विहार करता है। लेकिन जब हम इस संसार के धरातल पर देखते हैं तो हम अपने को असहाय पाते हैं। किसी को शारीरिक कष्ट है, किसी को मानसिक कष्ट है, किसी को धन दौलत का कष्ट है, कोई किसी रूप से पीड़ित है। हर प्राणी कहीं न कहीं दुखी है। दुख क्या है? जो हमें अच्छा नहीं लगता। सुख क्या है? जो हमें अच्छा लगता है। सुख और दुख भी एक द्वन्द्व है। हमें इन दोनों से परे होकर आत्मा के आनंद में चलना होगा और अक्षरातीत तो आनंद का अनंत सागर है। यदि उसको ही हमने दिल में बसा लिया, तो बाकी कुछ भी नहीं रह जाता है।

'सब सुख हैं अर्स में, रहें याद हक के माहें।।'

परमधाम में सब सुख है, यहां क्यों नहीं? एक प्रश्न खड़ा होता है। यदि हम कहते हैं कि हम परमधाम से आए हैं और अक्षरातीत हमें जगाने के लिए आए हैं। जब दोनों ही हैं, उनकी अंगनायें भी आई हैं और स्वयं अक्षरातीत आए हैं, तो हर कोई रोता क्यों है कि मैं बहुत दुखी हूं। दुखों का कारण क्या है? इसका उत्तर इस चौपाई में दे दिया। 'सब सुख हैं अर्स में, रहें

याद हक के माहें।' क्योंकि सभी राजजी की याद में रहते हैं। राजजी की याद करने का मतलब ये नहीं है कि राजश्यामा राजश्यामा हम जपते रहें, ये राजजी की याद हो गई। अभी, कल बारह महात्मा आए थे ज्ञानपीठ पर। मैंने उनसे पूछा कितने पढ़े हैं? उसमें पढ़े हुए तो दो थे। बेचारे मजदूर टाइप के लोग भगवे कपड़े पहन कर के महात्मा बन गए थे। पूछा कैसे याद करते हो राजजी को? क्योंकि आप लोग तो ज्यादा पढ़े नहीं हैं। कहते हैं कि हम लोग तंबूरा लेकर गा लेते हैं और माला पर जप कर लेते हैं। दोष उनका नहीं है। कह रहे हैं, 'रहें याद हक के माहें'। हक की याद। परमधाम में कोई माला का जप नहीं करेगा, कोई भोग नहीं लगाएगा, कोई मत्थे नहीं टेकेगा। ये तो इस माया की दुनियां में करना पड़ता है। जो एक दूसरे के दिल में बसा हुआ है, उसको इतनी सुध कहां है कि उसको साष्टांग प्रणाम करे। आप इतने भाई बहन बैठे हैं, कोई बताए मीरा बाई ने कितने करोड़ कृष्ण के मंत्र जपे होगें? राधा ने कितने कृष्ण के मंत्र जपे होगें? कितनी बार आरतियां उतारी होगीं? कितनी बार भोग लगाया होगा? कितनी बार मत्थे टेके होगें? क्योंकि राधा का तो अपना कोई पृथक अस्तित्व ही नहीं है। राधा ने अपने को भुला दिया है श्री कृष्ण के प्रेम में। मीरा ने अपने को भुला दिया है। जहां स्वयं का अस्तित्व हो, तब तो कोई कुछ करे। लेकिन मेरे कहने का मतलब ये नहीं है कि सुंदरसाथ सब कुछ बंद कर दें। ये तो उनके लिए है जो राजजी के प्रेम में डूब गए हैं। आप घर में वाणी पधराए हैं, आप प्रणाम भी नहीं करते, चितवनि भी नहीं करते, न हकीकत मारफत लेते हैं और न शरीयत ही लेते हैं, ये ठीक नहीं। यदि आपने अपने घर में वाणी पधरा रखी है, तो श्रद्धापूर्वक प्रणाम कीजिए ताकि बच्चों के अंदर भी धार्मिक संस्कार पैदा हों। उनको कहिए कि आरती करो। उनको कहिए कि भोग

लगाइए। लेकिन जब आप वाणी का चिंतन करने लगे हैं, तो आप सेवा पूजा के समय में कटौती कर दीजिए कुछ और अपने दिल में धनी की शोभा को बसाइए। आप की आत्मा उसकी है और वो आपका है और एकमात्र वही आपका है। जो आपने एक बहुत बड़ी गांठ बना रखी है कि ये मेरा है, ये मेरे परिवार के लोग हैं, ये मेरे समाज के लोग हैं, ये मेरी जाति–बिरादरी के लोग हैं, यही तो सबसे बड़ा भ्रम है।

'मेरी मेरी करत दुनी जात है, बोझ ब्रह्मांड सिर लेवे।
पाउ पलक का नहीं भरोसा, तो भी सिर सरजन को न देवे।।'

सहारनपुर का एक सुंदरसाथ है, मैं उनका नाम नहीं बताऊंगा। जब आते हैं तब अपना रोना रोते हैं। क्या करें, मेरे ऊपर पोते पोतियों की बहुत जिम्मेदारी आ गई है। मुझे हंसी आती है। मैं कहता हूं कि महाशय जी, आपकी इतनी उम्र हो गई, अब तो सब छोड़िए। कहते हैं, क्या करें, कर्त्तव्य है। पोते का यह हो जाना चाहिए, पोती का यह हो जाना चाहिए। पोते पोतियों को उनकी चिंता नहीं है। उनको चिंता लगी रहती है पोते पोतियों की। वो मानते हैं कि ये मेरे पोते हैं, ये मेरी पोती है। सच क्या है? उनका तो अपना शरीर भी नहीं है। यदि शरीर भी उनका होता तो कभी साथ नहीं छोड़ता। आपका क्या है? आप इस संसार में आए हैं तो क्या लेकर के आए हैं? और इस संसार में आपका क्या है जो लेकर के जाएगें। लेकिन मनुष्य को इतना भी पता नहीं होता। वो सोचता है कि मेरा ये घर, मेरा ये धन, मेरी ये पुत्री, मेरा ये पति, मेरी ये पत्नी, मेरा ये सब कुछ। वास्तव में मेरा तो केवल एक धामधनी है। 'मैं तो तुमारी कीयल'

राजजी कहते हैं कि मैं तो तुम्हारी आत्मा के दिल में बसता हूं। लेकिन नजर तब आऊंगा, जिसको तुम देख रही हो, उससे नजर हटा लो केवल मेरी तरफ नजर कर लो। धाम धनी हमारे पीछे बैठे हैं। हम पीछे नजर उठाना नहीं चाहें और कहें कि

राजजी दिखाई क्यों नहीं देते, तो राजजी क्या कहेगें? कि जिस मायावी जगत को तुम देख रही हो, उधर देखना बंद करके, नजर मेरी तरफ करो, तब तो मैं तुमको दिखाई दूं। यही हमसे हो नहीं पाता। धनी कहते हैं,

'हक नजीक सेहेरग से, आडो पट न द्वार।'

मैं तुमारी प्राण की नली से भी ज्यादा नजदीक हूं। मेरे और तुम्हारे बीच में कोई पर्दा नहीं है। पर्दा तो हमने कर रखा है। हम सोचते हैं कि हमारे और धाम धनी के बीच बहुत दूरी है। वो बेहद से भी पार है लेकिन जो बेहद के पार है वो कहता है कि प्राण की नली से भी ज्यादा नजदीक हूं। सारी वाणी का एक ही रहस्य नजर आता है कि जो अक्षरातीत दूर से दूर कहा गया है वेदों में, इतना दूर है कि कोई पार नहीं कर सका। बड़े बड़े ऋषि, मुनि, योगी यति कठोर साधनाएँ करके भी निराकार को पार नहीं कर सके तो बेहद को क्या पार करेगें। आज जिस साइन्स का अभिमान मनुष्य कर रहा है, उस साइन्स (विज्ञान) को मानने वाले निराकार को पार नहीं कर पाए तो बेहद को क्या जान पाएगें। जो बेहद को नहीं जान पाएगा, वो परमधाम को क्या जान पाएगा। वाणी कहती है कि संपूर्ण परमधाम आपके दिल में बसा हुआ है। नख से सिख तक युगल स्वरूप आपके दिल में बसे हुए हैं। लेकिन अनुभव कब होगा? जब हम संसार को देखना बंद कर देगें। और बस ये ही नहीं होता है। आंखें बंद करते हैं तो हमारे मन में जो संसार बसा हुआ है, उसका दृश्य खुल जाता है। यदि मन से संसार हट जाए, 'मन की खटपट जब मिटे, चटपट दरसन होए।' बस इतनी ही मंजिल पाने के लिए इतनी ध्यान साधना की राहें अपनाई जाती हैं। लेकिन मनुष्य समझ नहीं पाता। जहां प्रेम है, वहां पल भर में लक्ष्य प्राप्त हो जाता है। इसीलिए धामधनी ने कहा है,

'पंथ होवे कोट कलप, प्रेम पहुंचावे मिने पलक।'

बडे बडे योगी, यति, तपस्वी, व्रतधारी, ब्रह्मचारी उस परमात्मा को प्राप्त नहीं कर पाते क्योंकि समर्पण की राह उनको मिल नहीं पाती। प्रेम करें तो करें कैसे? अक्षरातीत ने महामति जी के धाम हृदय में विराजमान होकर जो वाणी दी उससे हम जान गए हैं कि हमारा अक्षरातीत अनंत सौंदर्य का सागर है, अनंत प्रेम का सागर है। उसकी तरफ नजर करके हमें संसार को भुला देना है, आगे का काम धाम धनी की मेहेर करती है। लेकिन हम सबसे बडे बदनसीब हैं। हिमालय की गुफाओं में बड़े बड़े योगी बैठे हुए हैं इस आशा से कि हमें परमात्मा मिल जाएगा। उनको ये मालूम नहीं है कि परमात्मा कहां है। उनको ये भी मालूम नहीं है कि परमात्मा कैसा है। हमें मालूम है लेकिन हमारे ऊपर आलस्य की चादर ऐसी डाल दी गयी है कि हमने हकीकत और मारफत की राह छोड दी। हमने दुनिया वालों की राह पकड ली है। परिणाम क्या हुआ? हमारे दिल में धाम धनी हैं लेकिन हमको नजर नहीं आ सकते। हम भी संशय की दीवारों से अपना सिर टकरा रहे हैं। हमारा सिर भी लहूलूहान हो चुका है। दुनियां रोती है हमने परमात्मा को नहीं देखा। हम भी रोते हैं, हमने परमात्मा को नहीं देखा। इसलिए क्योंकि सबसे नजर हटाकर हम धामधनी की तरफ केंद्रित नहीं हो पाते।

'अरस–परस हैं हक सों'

पशु पक्षियों की बात कही जा रही है। 'हम अरस परस है हक के', सिनगार की वाणी कहती है। पशु पक्षी भी क्या हैं? सब 'अरस–परस हैं हक सों। सभी पशु पक्षी राजजी से अरस परस हैं। जैसे सखियों के दिल में राजजी बैठते हैं, वैसे ही पशु पक्षियों के अंदर भी राजजी ही बैठे हैं। उनको दुनिया का पशु पक्षी नहीं समझ लीजिएगा। आप अपने कमरे में सूअर को प्रवेश नहीं करने देगें। कुत्ते को प्रवेश कुछ करने देगें लेकिन अपने बिस्तर पर तो नहीं बिठा सकते। हो सकता है कुछ बिस्तर पर

बिठा दें लेकिन वो अपनापन तो नहीं दे सकते। एक दूरी है। परमधाम में ऐसा नहीं है। परमधाम में राजजी के सिवा किसी अन्य का अस्तित्व ही नहीं है और कालमाया के ब्रह्मांड में माया के सिवा अन्य किसी का अस्तित्व नहीं है। हमारा जो जीव है, वो नारायण की चेतना का प्रतिबिंब है। नारायण की चेतना जीव के रूप में सभी प्राणियों के अंदर बैठी है और इस मायावी जगत के खेल को देख रही है। जन्मा कैसे जाता है, मरा कैसे जाता है, जवान कैसे शरीर होता है, बूढ़ा कैसे होता है, बच्चा कैसे होता है, कैसे 84 लाख योनियों में जीव भटकता फिरता है, कभी पशु है, कभी पक्षी है, कभी पेड़–पौधे है। रोता कैसे है, हंसता कैसे है, कैसे बीमार हो जाता है। यही तो खेल चल रहा है। कहीं शादी विवाह हो रहा है तो देखिए लोग उछलकूद रहे हैं, कहीं किसी का देह त्याग हो गया है तो लोग मातम मना रहे हैं, छाती पीट पीट कर रो रहे हैं। कोई भूख के मारे तड़प रहा है तो किसी के घर इतने व्यंजन बने हैं कि सड़न आने लगती है, उसको फेंक दिया जाता है कूड़ेदान के अंदर। यही माया की विचित्रता का संसार है। और इसको देखकर कोई विरला होता है जो सावचेत हो जाता है कि इस संसार में हमें मोहित नहीं होना है। क्योंकि जो इसमें मोहित हो जाता है वो अपने जीवन के तत्व ज्ञान से वंचित हो जाता है।

'अरस–परस हैं हक सों, आसिक हक के जोर।'

परमधाम का प्रत्येक पशु पक्षी राजजी से अरस परस है। अरस परस का तात्पर्य, उसके और राजजी के बीच में कोई भी दीवार नहीं है। हमारे और धनी के बीच में दीवार है, बहुत बड़ी और ये दीवार है अहम् की दीवार। मंदिर में साष्टांग लेटकर प्रणाम करने की रीति क्यों बनाई गई है? ताकि हम अपना अहम् मिटा सकें। और कोई बात नहीं है। रतनपुरी आश्रम में कई बार देखने को मिलता था, अड़ोस पड़ोस के प्रवाही लोग आ जाते

थे। बच्चों को कहा जाता था कि मंदिर में प्रणाम करो तो खड़े खड़े बहुत हुआ तो सिर हिला दिया, हाथ भी नहीं जोड़ते थे। भई, आप हिंदू हो, मंदिर में आए हो कम से कम हाथ जोड़कर श्रद्धा से प्रणाम करो, सिर नहीं झुका सकते तो। मनुष्य का अहम् टकरा रहा है। गुरुजनों के, माता पिता के चरण छूने की शिक्षा क्यों दी जाती है? सबको मालूम है कि जो चरण छू रहा है, उसके अंदर भी चेतना है और जिसके चरण छुए जा रहे हैं, वो भी चेतना है। अंदर में तो दोनों एक हैं। दोनों के अंदर एक ही चेतन्य ज्योति जल रही है। गुरु और शिष्य अंदर से एक हैं, ऊपर से दो इसलिए हैं क्योंकि इस संसार की मर्यादा है। एक में दीपक जल रहा है और एक में तेल भी है, बाती भी है लेकिन लौ नहीं लगी है। उसमें ज्योति जलानी है। हैं तो दोनों एक और जब दोनों जागृत हो जाते हैं तो दोनों एक स्वरूप हो जाते हैं। 'तुम सद्गुरु दीपक भए कियो जो आप समान।' परमधाम में हर पशु पक्षी ने अपने दिल को धनी के लिए सौंप दिया है। वो अपने शरीर को नहीं देखता। उसका चौबीस घंटे का काम है, राजजी को रिझाना। उसने अपना रोम रोम धनी के लिए सौंपा होता है। इसीलिए कहते हैं, 'अरस परस हैं हक सों, आसिक हक के जोर।' ये पशु पक्षी राजजी के इतने प्रेमी हैं कि उन्होंने अपने और धनी के बीच में कोई पर्दा नहीं रखा है। हमारे और धनी के बीच में बहुत बड़ा पर्दा है। सब जानते हैं, किसी के घर शादी होगी, देखिए किस तरह से नोटों की गड्डियां लुटाई जाती हैं। लाख, दस लाख, पंद्रह लाख, करोड़ तक भी सुन्दरसाथ लुटाने लगे हैं। लेकिन यदि कहा जाए कि राजजी के नाम पर दस हजार रूपये का साहित्य बांट दीजिए, कहेगें कि नहीं, दस हजार रूपये का खर्चा हम क्यों करें? जो लोग एक करोड़ रूपया दहेज में दे सकते हैं, पानी की तरह से लुटा सकते हैं, वो राजजी के नाम पर दस हजार का साहित्य नहीं

बंटवा सकते। क्योंकि उनको राजजी से प्रेम नहीं है। यही तो होता है, मनुष्य का अहम्। उसने एक संसार झूठा कल्पित कर लिया। मेरा ये घर है, मेरा ये पुत्र है, मेरी ये पोती है, मेरा पोता है, मेरा ये घर द्वार, मेरा ये साम्राज्य, मेरी प्रतिष्ठा और यही सब कुछ माया के बंधन है। सूक्ष्म माया जो दिखाई नहीं देती है। और इसी सूक्ष्म माया के जाल में मनुष्य बंधा हुआ है। सुंदरसाथ जो वाणी सागर, सिनगार, खिलवत, परिक्रमा पढ़ते हैं, वो भी इसके जाल की भूल भुलिया में फंसे हुए हैं। कोई विरला होता है जिसको धनी का प्रेम निकालता है।

'आवें दीदार को दरिया लेहेर ज्यों, कई पदमों लाख करोर।'

सागर के किनारे खड़े हो जाइए। आप लहरों को गिनना शुरू कीजिए। कितनी लहरों को गिन पाएगें? उसी तरह से परमधाम के पशु पक्षी धामधनी के दीदार के लिए इस तरह से दौडते हैं जैसे सागर में लहरें उमड़ा करती हैं। हजार, दस हजार, लाख, करोड़, दस करोड़, अरब, खरब, नील, पदम, संख, महासंख। इसके बाद और कई गणनाएँ आती हैं। कल्पना कीजिए, एक दृष्टांत दिया गया है, सागर के किनारे आप खड़े हो जाएँगें तो लाखों, करोड़ों, पदमों की संख्या में लहरें उमड़ती हुई दिखाई देगीं जहां तक आपकी नजर जाएगी। उसी तरह से परमधाम में अनन्त पशु पक्षी हैं और अनंत पशु पक्षी राजजी के दीदार के लिए दौड़ते हुए आते हैं। ये क्यों वर्णित किया गया है? ताकि हमारा पत्थर हृदय राजजी के प्रेम में कुछ तो पिघले कि परमधाम के पशु पक्षी जिनको हम छोटा समझते हैं क्योंकि परिक्रमा की लीला में ये वर्णित किया गया है कि सखियां क्या करती हैं, पशु पक्षियों पर चढ़कर के दौड़ती हैं, चाहे जल के पशु पक्षी हों, चाहे स्थल के पशु पक्षी हों और वहां तो जल और स्थल का कोई भेद ही नहीं है। घोड़ा आकाश में भी उड़ सकता है, पानी में भी चल सकता है। पानी वाले भी आकाश में उड़

सकते हैं। प्रकृति का वहां कोई बंधन नहीं है। हमारी आत्मा प्रेरणा ले सके कि परमधाम में कितना अनंत प्रेम है, जैसे सागर में लहरें उमड़ती हैं असंख्यों की संख्या में उसी तरह से परमधाम के असंख्य पशु पक्षी धनी का दीदार करने के लिए दौड़ते हैं लीला रूप में अन्यथा उनके धाम हृदय में धनी वैसे ही हैं जैसे सखियों की परात्म के अंदर धाम धनी बैठे हैं।

'कई लेहेरें आवत हैं, जो नाहीं जिमी को पार।'

जो नाहीं जिमी को पार, जिस परमधाम की धरती की कोई सीमा नहीं है। सागर में असंख्य लहरें जैसे उमड़ती रहती हैं वैसे ही परमधाम में पल पल पशु पक्षी धनी के दीदार के लिए दौड़ते रहते हैं। केवल धनी का दीदार चाहिए और कुछ नहीं। आपके सामने यदि राजजी साक्षात् प्रकट हो जाएँ तो आप क्या मांगेगें? कोई माँगेगा कि मुझे पृथ्वी का चक्रवर्ती सम्राट बना दीजिए, कोई कहेगा कि दिल्ली का मुख्यमंत्री बना दीजिए। कोई कहेगा कि भारत का प्रधानमंत्री बना दीजिए। कोई करोड़पति बनना चाहेगा, कोई अरबपति बनना चाहेगा। पशु पक्षियों को कुछ नहीं चाहिए। पशु पक्षियों को राजजी के सिवा कुछ चाहिए ही नहीं। आप पाठ क्यों रखवाते हैं? सबको मालूम है। हर पाठ के पीछे मन्नत होती है। जैसे व्यवसाय में घूस देना होता है, वैसे ही मन्नत की परंपरा है। पाठ के लिए तुरंत पैसा इकट्ठा हो जाएगा। एक हजार का 108 पाठ रखिए, तुरंत पैसा आ जाएगा। क्योंकि सबको घूस देनी आती है। जैसे आफिसों में घूस देते हैं। सोचते हैं कि ग्यारह सौ रूपये न्यौछावर दे देगें और इस ग्यारह सौ के बदले राजजी हमको एक लाख का तो कम से कम लाभ तो करा ही देगें। हमारे बच्चे की नौकरी लग जाएगी। हमारे घर का धंधा निकल जाएगा। इस पाठ से कोई फायदा नहीं है। अक्षरातीत को घूस से मत खरीदिए। प्रेम का सौदा मत कीजिए। पाठ एक नहीं, सौ रखवाइए लेकिन कामना

से नहीं। हां, राजजी का प्रेम पाने के लिए पाठ रखिए कि राजजी हमको माया के विकारों से दूर करो। हमें अपने प्रेम में डुबो दो। इसके लिए तो आप हजार पाठ रखिए। लेकिन माया के लिए पाठ मत रखा कीजिए और वो भी पैसे के बल पर। शुद्ध भावना से जो पाठ रखेगें, उसका फल है। पैसा रखकर तो कोई कुछ भी करवा सकता है। लेकिन यदि हृदय में भावना नहीं है, तो अक्षरातीत केवल शब्दों के बंधन में आने वाले नहीं हैं। अक्षरातीत को केवल प्रेम चाहिए। ''ल्याओ प्यार करो दीदार''। यदि आपके पास प्रेम है, तो अक्षरातीत आपके दिल में बसता है। एक पल भी दूर नहीं। नहीं तो आप करोड़ों पाठ रखवा लीजिए, हजार व्यक्तियों को बिठाकर के तारतम का जप करा लीजिए, यदि हृदय से पुकार नहीं जाती है, तो अक्षरातीत सुनते हुए भी अनसुना कर देगें।

'तेहेकीक अर्ज पोहोंचत है, जो भेजिए पाक दिल।'

आपका दिल पवित्र होना चाहिए। हृदय की पवित्र पुकार को सुनने वाला तो हृदय में ही बैठा है। उसको सुनाने के लिए बड़े बड़े लाउड स्पीकरों की जरूरत नहीं होती। आजकल हिंदू समाज के मंदिरों में देखिए, गुरूद्वारों में देखिए, मस्जिदों में देखिए, सवेरे ही शोर मच जाता है। इनसे पूछिए की क्या भगवान तुम्हारा बहरा है जो इतनी जोर जोर से लाउड स्पीकर सवेरे बजाना शुरू कर देते हैं। आरती भी करते हैं तो खूब जोर जोर से घंटी बजाएँगें ताकि चारों तरफ शोर मच जाए। वो दिल की पुकार सुनता है। दिल में ही बैठा होता है। वो तो हमें कसौटी पर परखना चाहता है कि हमने संसार से कितना किनारा कर लिया।

'पीछे आवें दरिया पसुअन के, तिन दरियाव नहीं सुमार।।'

जिस तरह से अनंत धरती हो, अनंत धरती पर अनंत समुद्र हो और उसमें लहरें हों, वैसे ही परमधाम की अनंत धरती पर अनंत पशु पक्षी हैं। और पशु पक्षियों के समूह को एक सागर माना

जाए तो वाणी कहती है कि 'तिन दरियाव नहीं सुमार', पशु पक्षियों का समूह रूपी सागर कितना है, बुद्धि इसकी कल्पना नहीं कर सकती। वो अनंत है। और उनमें पशु पक्षी राजजी के दीदार के लिए आते हैं। हम सीमा न बनाएँ किसी की। न सखियों को सीमा में बांधें, न पशु पक्षियों को सीमा में बांधें। परमधाम को भी सीमा में बाँधने का हमें नैतिक अधिकार नहीं है।

'इंतहाए नहीं अर्स भोम का, सब चीजों नहीं सुमार।'

परमधाम की कोई सीमा नहीं। पचास करोड़ योजन तो हमारी बुद्धि में समझ में आने के लिए कह दिया जाता है। चाहे पुखराज की माप हो, हौज कौसर की माप हो, रंग महल की माप हो, या जमुना जी की माप हो। सागरों की जो भी माप है, हमको लंबाई, चौड़ाई, इतने योजन, इतने हाथ, जो भी बताया जाता है, ये तो एक बिंदु मात्र है। जैसे आपने गंगाजी का जल एक शीशी में भर लिया। और सबको सुनाते फिरते हैं कि देखो, मेरे घर में गंगा बह रही है, गंगा थोड़े ही बह रही है। आपने तो गंगा जल के एक छोटी सी मात्रा को शीशी में भरकर के रखा है। गंगा के जल का गुण उसमें है, लेकिन संपूर्ण गंगा तो आपके घर में क्या आपकी पूरी बस्ती में नहीं समा सकती। और उसका जल इतना अथाह है कि साल में कभी सूखता नहीं है। उसी तरह से अनंत परमधाम है आपका। एक एक कण में अनंत सूर्यों का प्रकाश है। एक एक कण में अक्षरातीत का अनंत सौंदर्य और उसको बसाना है आपने अपने दिल में। दिल में तो पहले से ही उसका प्रतिबिंब झलक रहा है लेकिन आप उसकी तरफ नजर ही नहीं करते। चितवनी का अर्थ क्या होता है? अभी तक आपके मन में संसार बसा हुआ है। सबसे पहले जो बसा हुआ है, वो है आपका अपना शरीर। आपने स्त्री का या पुरूष का शरीर धारण किया है। उसकी एक अवस्था है। उसका एक रूप रंग है। ये भी एक बंधन है। इसको भुला दीजिए। आपकी

अवस्था 80 साल की है या 15 साल की है या 40 साल की है। इससे कोई लेना देना नहीं है। आप इतना समझिए कि मेरी आत्मा वही है जैसी हमारी परात्म है। हूबहू श्यामाजी का स्वरूप मान लीजिए। आप कहां बैठे हैं? झोंपड़ी में बैठे हैं या किसी शानदार कोठी में बैठे हैं। इसको भी भुला दीजिए। आप विद्वान हैं या मूर्ख हैं, पापी हैं या पुण्यात्मा। आप समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं कि बदनाम व्यक्ति हैं। इन सारे द्वंद्वों को भुला दीजिए। आप अमीर हैं कि गरीब हैं, सुखी हैं कि दुखी हैं। सबको भुला दीजिए। राजजी के सामने गिड़गिड़ाना भी बंद कर दीजिए। केवल प्रेम।

'हक इलम ले देखिए, तो होइए अर्स माफक।'

अधिकार मांगिए, भीख नहीं। प्रेम अधिकार मांगता है। प्रेम कभी भीख नहीं मांगता। मुक्ति की भीख जो मांगते हैं, उनको प्रेम का अधिकार कहां से मिलेगा? जिसने अपने अस्तित्व को मिटा दिया, केवल अपनी परात्म का सिनगार कर लिया, वही प्रेम की राह पर चल सकता है। और उनके लिए ही परमधाम है, उनके लिए ही युगल स्वरूप के चरण कमल हैं।

हमारी आत्मा के धाम हृदय में अनंत परमधाम जगमगा रहा है। आप सोचेंगे कि कैसे हो सकता है? आपका यह जो सूरज आकाश में चमकता है, पृथ्वी से 13 लाख गुना बडा है। एक नहीं, ऐसे ऐसे एक दर्जन से भी ज्यादा सूरज को आप एक छोटी सी बाल्टी में रख सकते हैं। कैसे? बाल्टी में पानी डालिए, थोडा सा सर्फ डालिए, हाथ से हिला दीजिए, झाग बन जाएगी और उसको धूप में रख दीजिए और फिर देखिए हर बुलबुले के अंदर सूरज चमकता हुआ दिखाई देगा। आप क्या कहेगें कि मैंने तो कई दर्जन सूरज अपनी बाल्टी के अंदर बटोर रखे हैं। जो ऊपर आकाश में सूरज चमक रहा है, हुबहू वैसा ही सूरज, एक नहीं, कई कई सूरज आपकी बाल्टी के अंदर दिखाई देंगें। वैसे ही अनंत परमधाम आपके छोटे से दिल के अंदर

जगमगाता हुआ दिखाई देगा। नख से शिख तक युगल स्वरूप आपकी आत्मा के धाम दिल में दिखाई देगें। लेकिन हमें संसार से आंखें बंद करनी पडेगीं। शरीर से, संसार से जैसे ही मोह हटेगा, अक्षरातीत की तरफ हमारी नजर जाएगी। युगल स्वरूप हमारे धाम हृदय में अखंड रूप से बसे हुए नजर आएगें। इसको कहते हैं अध्यात्म की पराकाष्ठा। और इसी को पाने के लिए इतने बड़े बड़े ग्रंथ, चार वेद, छः शास्त्र, कुरान, बाइबल, न जाने कितने ग्रंथों की भरमार है। दुनियां पढ़ पढ़ के थक गई है।

'पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोए।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होए।।' कबीर

प्रेम क्या? अक्षरातीत से लगन लग गई तो शरीर भूल गया, संसार भूल गया। बस यही तो करना होता है। धाम धनी सिंधी में आखिर में कहते हैं कि मेरे और तुम्हारे बीच में कोई पर्दा नहीं है। लेकिन हम पर्दा बनाते हैं। पता नहीं राजजी हमारी बात सुनते हैं या नहीं सुनते। पता नहीं, यदि सौ पाठ हम भी करा दें तो राजजी हमारी अर्जी मान लेगें। संशय की दीवार किसने खड़ी की? कुछ काम नहीं हुआ तो क्या कहते हैं कि राजजी हमारी नहीं सुन रहे हैं, औरों की सुन रहे हैं। औरों पर मेहेर कर रहे हैं, हमारे पर नहीं कर रहे। हमको धाम धनी पर विश्वास ही नहीं रहा। वो हमारा प्रियतम है, हम उसकी प्रियतमा हैं। वो हमसे अनंत गुना प्रेम करता है। वो तो हमारे दिल में पहले से बैठा हुआ है। वो केवल इतना चाहता है कि सबको छोड़कर मेरी तरफ देखना शुरू कर दो और जिस दिन हम ऐसा कर देगें, हमारे हृदय मंदिर में वो नजर आना शुरू हो जाएगा। बस हमारे प्रेम की परीक्षा चल रही है और हम बार बार इसमें फेल होते जा रहे हैं।

'दौड़ इनों के मन की, क्यों कर कहूं छंछेक।'

पशु पक्षियों के मन कितनी तेजी से दौड़ते हैं। पशु पक्षियों को कुछ नहीं चाहिए। उनको भूख लगनी नहीं है, प्यास लगनी नहीं

है। केवल एक ही चौबीस घंटे की तमन्ना होती है कि बस राजजी दीदार देते रहें। जब हमको चर्चनी सिखाई जाती है तो एक बाऊंडरी बना दी जाती है कि पशु पक्षी चांदनी चौक तक जाएँ, अंदर न घुसने पाएँ। वो परमधाम क्या होगा जिसमें पहरेदारी लगी हो कि पशु पक्षियों को इसमें घुसने की इजाजत नहीं है। जो दिल श्यामाजी का है, वही सखियों का दिल है और वही खूब खुशालियों का दिल है। पशु पक्षियों के जो चित्र दीवालों पर बने होते हैं, वो भी चेतन होते हैं। दीवारों पर बने हुए पशु पक्षियों के ऊपर बैठकर राजजी, श्यामाजी, सखियाँ पूरे परमधाम की उड़ान भरते हैं। ये केवल हमारी बुद्धि में समझ में आने के लिए है। कल्पना कीजिए यदि इस दुनिया का भी नियम वहां लागू करें कि चांदनी चौक को पार करके, सौ सीढ़ियाँ चढ़कर पशु पक्षी अंदर रंगमहल में नहीं जा सकते, तो दीवारों पर जो पशु पक्षी हैं उनका दिल और बाहर वाले पशु पक्षियों का एक ही दिल है। एक सांसारिक दृष्टांत देता हूं, उससे बात समझ में आ जाएगी। लैला और मजनू में बहुत लगाव था। पत्थर पड़ते थे एक के ऊपर, पीड़ा होती थी दूसरे को। ये तो सांसारिक मोह है। आप किसी बच्चे को उसकी माँ के सामने तीन चार फीट ऊँची जगह से धकेल दीजिए, चीख किसकी निकलेगी? बच्चा तो बाद में रोएगा, पहले चीख मां की निकल जाएगी क्योंकि मां का दिल उससे जुड़ा हुआ है। जबकि वाहेदत नहीं है। परमधाम में तो सबका एक ही दिल है। इसलिए जो सुख श्यामाजी को मिलता है, जो आनंद श्यामाजी को मिलता है, सखियों को मिलता है, वही सुख पशु पक्षियों को भी मिलता है। चौथी भूमिका में होने वाली लीला का आनंद सभी पशु पक्षियों को मिलता है। ये न समझिए कि वो पशु पक्षी हैं, उन्हें किनारा कर दिया जाए। हर लीला का आनंद परमधाम के जर्रे जर्रे के अंदर समाया होता है।

'पोहोंचे सब कदमों तले', धनी के चरणों में पहुँचते हैं। चरणों में पहुंचने का मतलब, उनके समक्ष पहुँच जाना ताकि हम दीदार कर सकें।

'पोहोंचे सब कदमों तले, जित खावंद सबों का एक।।'

'अरस के जानवरों का कायम है सोहाग'। जैसे सखियाँ सुहागिन हैं, वैसे पशु पक्षी भी सुहागिन हैं। हमसे शरीर का यह भ्रम दूर नहीं होता और जब तक ये शरीर नज़र आता है तब तक आप प्रेम के अधिकारी नहीं।

'प्रेम सब्दातीत तो कह्या, जो हुआ ब्रह्म के घर।'

सो तो निराकार के पार के पार, सो इत दुनी पावे क्यों कर।।'

दुनियां लगाव को प्रेम जानती है, ये प्रेम नहीं है। प्रेम कहते हैं अपने अस्तित्व को मिटा देने को। केवल प्रेमास्पद रह जाए। 'जित खावंद सबों का एक', जहां सबके प्राण वल्लभ एक अक्षरातीत रहते हैं, उनके दीदार के लिए संपूर्ण परमधाम उमड़ा करता है। परमधाम के जर्रे जर्रे में केवल 'तू' की आवाज़ आती है। केवल 'तू' और इस माया के संसार में केवल 'मैं' की आवाज आती है। पत्नी की 'मैं' अलग, पति की 'मैं' अलग, गुरू की 'मैं' अलग, शिष्य की 'मैं' अलग। शिष्य ने गुरू को प्रणाम नहीं किया, गुरू नाराज। पत्नी ने कोई सेवा में चूक कर दी, पति का मुँह फूल गया। पति ने पत्नी की कोई फरमाइश पूरी नहीं की, पत्नी का मुँह फूल गया। यहाँ तो टकराव ही टकराव है। राग द्वेष के बंधन हैं। परमधाम इससे उल्टा है। परमधाम में केवल 'तू', 'मैं' नहीं। और इस संसार में केवल 'मैं', 'तू' किसी ने सीखा ही नहीं और जिसने 'तू' सीख लिया उसके हृदय में स्वयं अक्षरातीत आ जाते हैं। इसीलिए तो कहते हैं,

'प्रेम गली अति सांकरी तांमें दो न समाहिं।'

'जो ठौर चित्त में चितवें'

पशु पक्षी परमधाम में कहीं भी हों, किसी के भी दिल में बात

आती है कि हम राजजी का दीदार करें, राजजी रंग महल में हैं, पशु पक्षी कोई हौज कौसर के अंदर है, उसके मन में यदि इच्छा हो कि हमें राजजी का दीदार चाहिए। राजजी कोई इंसान नहीं है कि उनको भी यदि सखियों के साथ नौंवी भोम में सिंघासन पर बैठे हुए हैं तो ये न समझिए कि उनको सुखपाल लेकर आना पडेगा। या चांदनी चौक में आएँगें, फिर दौड़ कर के जाएँगें। ऐसा नहीं है।

'धनी इनों के कारने, सरूप धरें कई करोर।
लें दिल चाह्या दरसन, ऐसें आसिक हक के जोर।।'

धनी के इतने प्रेमी हैं कि पल भर में धनी को उन्हें दीदार देना पड़ता है। एक पल की देरी हो जाएगी तो ये लगेगा कि प्राण छोड़ देगें। ये इनका प्रेम है। हमारे लिए सबसे बड़ा सिखापन है। हम सुंदरसाथ तो प्रवाहियों की नकल कर रहे हैं। हम माला ले करके बैठ जाते हैं। हमने एक माला तारतम की कर ली, हमने दो कर ली। हम भी उनकी तरह परिक्रमा लगाते हैं। मैं क्षमा चाहूंगा इस बात को कहते समय, अयोध्या में परिक्रमा की जाती है, पंचकोसी परिक्रमा कहलाती है। वृंदावन में पंचकोसी या ग्यारह कोस की परिक्रमा कहलाती है। उसके देखा देखी हमारे समाज में भी परिक्रमा होती है। यदि श्रद्धा भावना है तो परिक्रमा तो गुम्मट जी, बंगला जी की करिए। बस्ती की परिक्रमा किस ग्रंथ में लिखी है। चाहे अयोध्या हो, काशी हो, वृंदावन हो, चाहे पन्नाजी हो। किसी भी बस्ती में शराब की दुकानें होती हैं, कसाई की भी दुकाने होती हैं। हर शहर के अंदर एक से एक पापी लोग होते हैं, फिर उनकी परिक्रमा बाहर बाहर करने का क्या लाभ? लेकिन जब एक परंपरा चल पड़ती है, तो उस परंपरा को दुनिया आंख मूंद कर के मानती है। परिक्रमा मैंने बताया था, कितनी तरह से होती है। चार तरह से। एक परिक्रमा होती है शरीर से। हम मंदिर के चारों तरफ

या अपने आराध्य चाहे उसको ग्रंथ के रूप में मानते हों, मूर्ति के रूप में मानते हों, उसको देखते हुए चारों तरफ हम घूमते रहते हैं, इसको शरीर की परिक्रमा कहते हैं। दूसरी परिक्रमा होती है मन के द्वारा। हमारा मन हमेशा उसी में लगा रहे, ये है मानसिक परिक्रमा। और तीसरी परिक्रमा होती है बौद्धिक परिक्रमा। यदि हमें चर्चनी की गहराई से जानकारी हो, परिक्रमा की चौपाइयों में खोए रहें, एक एक शब्द का अर्थ हमें मालूम हो, परमधाम की रचना कैसी है, बुद्धि की विवेचना में लगे हुए हैं। ये है बौद्धिक परिक्रमा जिसको कहते हैं चर्चनी और एक परिक्रमा है आत्मिक परिक्रमा। शरीर का कोई लेना देना नहीं, मन का कोई लेना देना नहीं, बुद्धि से कुछ भी लेना देना नहीं। आत्मा शरीर से परे, मन से परे, बुद्धि से परे हो गई। न उसको शरीर दिख रहा है, न जीव भाव दिख रहा है। अपनी परात्म का सिंगार करके खड़ी हो गई है और परमधाम के एक एक पक्ष को साक्षात् देख रही है। इसको कहते हैं आत्मिक परिक्रमा। आत्मिक परिक्रमा के स्तर पर हम पहुंच जांए, इसके लिए ये परिक्रमा ग्रंथ का अवतरण हुआ है। परिक्रमा का तात्पर्य क्या होता है? एक परिधि के चारों तरफ घूमना। लक्ष्य में एक केंद्र होता है। हमारे लक्ष्य में कौन है? राजजी श्यामाजी, परमधाम के 25 पक्ष। हम उन 25 पक्षों में युगल स्वरूप को केंद्र मानकर के भ्रमण करते रहें, इसको कहते हैं परिक्रमा। और ये कैसे होगा? चितवनी के द्वारा होगा। हमारे समाज में चितवनी का कितना प्रचार है, सब आंखों से दिखाई दे रहा है। अभी पृथ्वी परिक्रमा का त्यौहार बीता। नाम रखा गया पृथ्वी परिक्रमा। परमधाम की परिक्रमा नहीं। मैं समझता हूं लगभग दस हजार सुंदरसाथ इकट्ठे हुए होगें। दस हजार को चितवनी में बिठा दीजिए, सब कहेगें कि क्या आफत आ गई है। आंखें बंद करेगें तभी संसार हटेगा। आप पृथ्वी की परिक्रमा कर

लीजिए, पूरे ब्रह्मांड की परिक्रमा कर लीजिए, कुछ मिलने वाला नहीं है। हर जगह मेहेर सागर की परिक्रमा होती है, मंदिर के चारों तरफ परिक्रमा की जाती है। मैं ये नहीं कहता कि मत कीजिए लेकिन परिक्रमा करते करते यदि मन संसार में घूमता है, तो ये तो दिखावे की बंदगी है।

''इस्क बंदगी अल्लाह की, सो होत है हजूर।
फरज बंदगी जाहेरी, सो लिखी हक से दूर।।''

परिक्रमा करने से एक लाभ जरूर होता है कि भोजन पच जाता है। शारीरिक लाभ तो मिल जाता है, आत्मिक लाभ नहीं मिलेगा। आत्मिक लाभ यदि लेना है तो आत्मा से परिक्रमा करनी पड़ेगी। शरीर को भुलाना पड़ेगा। मन, बुद्धि को यहाँ छोड़िए। जीव को यहाँ छोड़िए। इलम की चतुराई को यहाँ छोड़िए। अपने हृदय में प्रेम लेकर युगल स्वरूप को दिल में बसाइए। किसी भी तरह की निंदा, दूसरे से राग द्वेष, ये आपका ही अहित कर रहे हैं। हमें संसार से अपनी नजर हटा कर धनी के चरणों में ले चलनी है। एक एक पल का सदुपयोग हमारे लिए अपेक्षित है। और तभी हमारी आत्मा जागनी की राह पर चल पड़ेगी। सब सुंदरसाथ से मैं आग्रह करूंगा कि चितवनी की प्रक्रिया को तेज करने की आवश्यकता है, वाणी के चिंतन की गहराइयों में डूबने की आवश्यकता है। सुंदरसाथ का एक बहुसंख्यक वर्ग मैं समझता हूं, 90–95 प्रतिशत सुंदरसाथ, सुंदरसाथ का मतलब, सारा सुंदरसाथ, पंजाब से लेकर पूरे हिंदुस्तान में, देश विदेश में जो भी हैं, चाहे कहीं से जुड़ा हो, किसी भी स्थान से, कहीं न कहीं शरीयत की मजबूत रस्सियों से बंधा हुआ है। उन बंधनों को खोलने की जरूरत है। हकीकत की राह पकड़नी है कि हमें आत्मिक दृष्टि से परिक्रमा करनी है, और तब हम अपनी आत्मा के धामधनी को पा सकते हैं।

अरवा आसिक जो अर्स की, ताके हिरदे हक सूरत। E
निमख न न्यारी हो सके, मेहेबूब की मूरत।।

और न पावें पैठने,

अक्षरातीत धाम के धनी सिनगार ग्रंथ के इस प्रकरण में ब्रह्मसृष्टि में और जीव में क्या अंतर है, ये बता रहे हैं। यह प्रकरण शुरु होता है – 'मोमिन दुनीका बेवरा'। सामान्य रूप से देखा जाता है, बाहर के रूप रंग से ब्रह्मसृष्टि और जीव सृष्टि में कोई भी अंतर नहीं है। और सांसारिक नजर से देखा जाए तो जीव सृष्टि ही सबसे बड़े–बड़े पदों पर हैं। ब्रह्मसृष्टि में आज तक कोई प्रधानमंत्री नहीं बना, राष्ट्रपति नहीं बना। संभव है कि ब्रह्मसृष्टि ऐसे तन पर बैठी है जो बहुत गरीब है, झोपड़ पट्टी में रहता है, शरीर पर कपड़े भी फटे हुए हैं। देखने वाले को क्या लगेगा? कि ये कहते हैं कि हम परमधाम से आये हें। हमारे पास जो ज्ञान है, वो नारायण के पास भी नहीं है। और इनकी हालत इतनी फटीचर क्यों? सांसारिक उपलब्धियों के आधार पर ये मूल्यांकन नहीं किया जा सकता कि कौन कहां का रहने वाला है? कबीर जी के बारे में ये बात प्रसिद्ध है। पूरे दिन भर वो कपड़ा बुनते थे और जो कुछ उसमें से उपलब्धि होती थी, उसमें भी अधिकतर भाग साधु महात्माओं को खिला देते थे और जो बचता था, उसी का रूखा–सूखा वो खाते थे। एक कपड़ा बुनने वाले को कैसे कहा जा सकता है कि उसकी पहुंच वहां तक है जहां नारायण भी नहीं पहुंचे। नारायण तो निराकार को पार नहीं कर सके लेकिन कबीर जी जो कपड़ा बुनने का व्यवसाय करते थे, कहां तक पहुंचे थे? निराकार को पार करके बेहद में पहुंचे थे और उस अखंड का वर्णन कर दिया जहां तक सुकदेव भी नहीं पहुंच पाये। स्वयं शंकर जी भी जिस परमधाम का ज्ञान यथार्थ रूप से नहीं जान पाये थे, वो कबीर जी ने वर्णित कर दिया। कोई व्यक्ति माया का धन कमा सकता है।

अच्छे पद पर बैठ सकता है, तो इसका मतलब ये नहीं कि वो परमधाम का है और कोई गरीब है, तो इसका मतलब ये नहीं कि वो परमधाम का नहीं है। ये तो सांसारिक उपलब्धियां हैं। ब्रह्मसृष्टि की विशेषता क्या होती है? उसमें मुख्य रूप से सबसे बड़ी चीज होती है–अटूट ईमान। ईमान का अर्थ क्या होता है? अटूट विश्वास समर्पण। सागर के किनारे कोई व्यक्ति खड़ा हो जाये, लहरें आयेंगी, चली जायेगी। यदि कोई व्यक्ति अपने पांव को ढ़ीला छोड़ता है तो लहरे बहा ले जायेगी। संसार का जीव जरा सा कष्ट पड़ेगा, तो सोचेगा कि चलो, राजजी नहीं करते हैं, हनुमान जी के शरण में चले जायेगे, तो क्या अन्तर पड़ जायेगा? लेकिन परमधाम की ब्रह्मसृष्टि चाहे कितना भी कष्ट हो जाये, उसका ईमान एक अक्षरातीत से नहीं हटेगा। उसको अटूट श्रद्धा है। आप सांसारिक दृष्टांत से देखिए–

सीता रावण के पहरे में है। शरीर हड्डियों का ढांचा बन चुका है। सीता को न कपड़े पहनने की चिंता है, न नहाने की चिंता है। सीता के ध्यान में केवल राम है। रावण कहता है कि सीता, तुम पागलपन कर रही हो। तुम मेरी पटरानी बन जाओ, सोने की लंका तुम्हारे निवास के लिए है। मेरी सारी पटरानियां तुम्हारी दासी बन कर के रहेंगी लेकिन सीता ऐसी है कि रावण की तरफ आंख भी नहीं उठा कर देखती। ये निष्ठा है। रावण बहुत कटु शब्दों में संबोधित करता है कि तुम्हारा राम तो जंगल का भिखारी है। जंगल में 14 साल रहते हुए हो गया। मैंने तो सारी दुनिया को जीत रखा है। मेरी तरफ दृष्टि क्यों नहीं उठाती? लेकिन सीता का एक ही कथन है कि रावण! तुम्हारा स्वप्न कभी पूरा नहीं होगा। यदि माया की सीता ऐसा व्यवहार कर सकती है, तो जो परमधाम की ब्रह्मसृष्टि कहलाने वाले हैं, उनका क्या उत्तरदायित्व होता है? इसमें यही बात बताई गई है कि जो परमधाम की ब्रह्मसृष्टि होगी, उसके अंदर अक्षरातीत

की शोभा विराजमान होगी।
'अरवा आसिक जो अर्स की, ताके हिरदे हक सूरत।
निमख न न्यारी हो सके, मेहेबूब की मूरत'।।
आप देखेंगे, संसार में कितने बड़े–बड़े पंथ हैं। व्यास जी का जो स्थान है, राधा स्वामी वालों का, उनका वैभव देखिए, खान पान की व्यवस्था देखिये। तो क्या लगेगा? हम तो कहीं पे भी नहीं ठहरते। फिर अमृतसर में स्वर्ण मंदिर चले जाईये, तो लगेगा कि अपना पन्ना जी तो कहीं भी नहीं ठहरता लेकिन ये सांसारिक उपलब्धियां हैं। अंदर से टटोलेंगे तो क्या लगेगा? पूछा जाए कि आपने परमात्मा को क्या पाया है? कोई कहेगा कि हम शब्द सुनते हैं। कोई कहेगा कि ज्योति देखते हैं। कोई कुछ कहेगा। आप, जहां पोप रहते हैं, मैकसीको में, वहां जाकर पोप का वैभव देखिए तो लगेगा कि क्या उनका साम्राज्य है? क्या उनकी साहेबी है? यानि, इस संसार वालों के सामने हम तो कहीं भी नहीं ठहरते। लेकिन ब्रह्मसृष्टि की सबसे बड़ी विशेषता ये होगी कि उसके दिल में धनी की शोभा अखंड रूप से विराजमान होगी। ब्रह्मसृष्टि की पहचान रूपये पैसे से नहीं की जा सकती। रूप रंग से नहीं की जा सकती, उसके कपड़े से नहीं की जा सकती। 'मोमिन दुनी के बेवरे' में यही बात विशेष रूप से दर्शायी गयी है।
'और न पावें पैठने, इत बका बीच खिलवत।'
संसार में कोई भी व्यक्ति अखंड परमधाम के अंदर मूल मिलावे में ब्रह्मसृष्टियों के सिवा नहीं जा सकता और श्यामा जी का दीदार नहीं कर सकता। तारतम ज्ञान का प्रकाश सबके लिये है। जो इस वाणी पर अटूट आस्था रखेगा और ब्रह्मसृष्टियों की तरह ही अंगना भाव से धाम धनी को रिझायेगा, उसका जीव जरूर परमधाम के 25 पक्षों में घूम लेगा, राजजी का दर्शन कर लेगा, लेकिन श्यामाजी और सखियों का दर्शन उसको नहीं

होगा! अक्षर ब्रह्म को नहीं हो सकता है, जिस अक्षर ब्रह्म के एक इशारे से करोड़ों ब्रह्माण्ड एक पल में बनते हैं और लय को प्राप्त हो जाते हैं। फिर नारायण की क्या शक्ति? और नारायण के बनाये हुए इस संसार में, आप कल्पना नहीं कर सकते कि दुनिया कितनी बड़ी है। 350 अरब, हमारे सूर्य जैसे सूर्य हैं, हमारी आकाश गंगा में! और क्या आपको मालूम है कि हमारी आकाश गंगाओं की कितनी संख्या है? 500 अरब निहारिकायें आज तक जानकारी में आई हैं। अभी ये जो जानकारी है, केवल मनुष्य की बुद्धि आंकलन कर पाई है। इसके परे भी अभी बहुत कुछ है जो मनुष्य की बुद्धि में नहीं समाता। हमारा सूर्य तो पृथ्वी से 13 लाख गुणा है, और इस 13 लाख गुणे बड़े सूर्य से 350 अरब सूर्य और हैं, जो इस सूर्य से बहुत बड़े–बड़े हैं। मनुष्य तो एक छोटी सी दुनिया में रहता है। कोई फैक्टरी बैठा लेता है, कोई महल बना लेता है, और उसी पर इतराता रहता है। यौवन काल में तो मनुष्य को पता ही नहीं चलता कि आखिर वो अपने को क्या समझता है? ऐसा भी समय आता है जब यौवन ढ़लने लगता है, बालों में सफेदी आने लगती है, कानों से सुनाई पड़ना कम हो जाता है लेकिन मनुष्य को तब होश आता है जब तक वो लुट पिट गया होता है और मौत प्रतीक्षा कर रही होती है। इसके पहले तो उसे यौवन का अहंकार, धन का अहंकार, रूप का अहंकार, विद्या का अहंकार, पद का अहंकार, प्रतिष्ठा का अहंकार खाये जाता है। वो सर्वशक्तिमान परमात्मा के बारे में सोच ही नहीं पाता कि आखिर हमारा अस्तित्व क्या है?

कल्पना कीजिए, किसी के पास 1000 हीरे हैं। 1000 हीरों का दाम तो करोड़ों अरबों में होगा। लेकिन वो हीरे किस काम के? एक ऐसे ग्रह का पता चला है जो पूरा ग्रह ही हीरे का है। आपकी पृथ्वी में न जाने कितने हीरे, मोती दबे पड़े हैं। मनुष्य किस पर पागल हो रहा है? हीरा क्या है? चमकता हुआ पत्थर

ही तो है। सोना क्या है? मोती क्या है? है तो ये सब कंकड़ पत्थर ही लेकिन मनुष्य इसी को सब कुछ माने बैठा है। जो आत्मा का प्रियतम है, वो अनंत सूर्यों से भी अधिक प्रकाशमान, हमारे हृदय मंदिर में रहता है, लेकिन दुनिया की नजर उसकी तरफ नहीं जाती। 14 लोक की दुनिया तो केवल कमाने खाने में लगी है। धन कमाना जरूरी है, क्योंकि भोजन भी इसी से मिलेगा, वस्त्रा भी इसी से मिलेगा। लेकिन इस का मतलब ये नहीं है कि राजजी को पीछे कर दीजिए। आप, अमेरिका में चले जाइये, 24 धंटे केवल हाय हाय मची है। हमारे पड़ोसी के पास दो कारे हैं, तो मेरे पास चार कारें होनी चाहिए। पड़ोसी करोड़पति है, तो मुझे उससे दस गुणा होना है। स्त्राी–पुरुष दोनों काम करते हैं। दिन–रात धन कमाते हैं। मनुष्य अपने सुख–सुविधाओं को इकट्ठा करे, वो तो बात कही जाती है, लेकिन इनको संग्रहित करने के बदले प्रियतम अक्षरातीत से ही पीठ मोड़ ले, यही उस की सबसे बड़ी भूल होती है और धाम धनी यही बात बता रहे हैं कि जो परमधाम की ब्रह्मसृष्टि होगी, उसके दिल से, एक क्षण के लिए भी, धनी के चरण कमलों की शोभा, नख से सिख तक की शोभा कभी भी अलग नहीं होगी।

सुंदरसाथ को ध्यान में बैठने के लिए कहा जाता है, तो सुंदरसाथ कहते हैं कि हमने तो राजजी को देखा नहीं है, तो फिर ध्यान कैसे करें? आपने देखा नहीं है, लेकिन महामति जी ने तो देखा है। महामतिजी ने तो राजजी के एक–एक अंग की शोभा का वर्णन किया है। आप पढ़कर तो जान सकते हैं। आप सोचेंगे कि ये कल्पना है। ये कल्पना नहीं है। महामति जी ने देखा है, उसका वर्णन किया है और जब आप भी उसके चिंतन में लगेंगे, प्रेम भाव में डूबेंगे, तो आपको हूबहू वो शोभा नजर आने लगेगी। वो कल्पना यथार्थता में बदल जायेगी लेकिन उसके लिए क्या चाहिए? अटूट संकल्प, दृढ़ आस्था, प्रेम और

विरह का रस। इसके बिना आत्मा के दिल में धाम धनी के चरण कमल नहीं बस सकते हैं।

'बका अर्स अजीम में, कौन आवें बिना निसबत।।'

संसार एक प्रवाह में बहा जा रहा है। संसार के लोगों का चिंतन कहां तक होता है? पृथ्वी तक। आज की युवा पीढ़ी क्या सोचती है? मैं पढ़ लूं, लिख लूं और अधिक से अधिक धन संग्रह कर लूं, परिवार बसा लूं। उसके बाद क्या होगा? आप डाक्टर बनते हैं, इंजीनियर बनते हैं, वैज्ञानिक बनते हैं। आपने मान लीजिए एक करोड़ या दस करोड़ रुपये कमा लिए। कोठियां बनाईं, परिवार का पालन पोषण किया। आखिर एक दिन आप वृद्ध तो होंगे। एक दिन शरीर तो छूटेगा। आखिर अन्ततोगत्वा गति क्या होगी? भौतिकवादता के पीछे आंख मूंद कर के पागल हो जाना, ये सबसे बड़ी भूल है। एक संतुलन होना चाहिए—भौतिकता में और अध्यात्मिकता में। हमें अपने ज्ञान के चक्षु खुले रखने होगें। यदि हम ज्ञान के चक्षु नहीं खोलते हैं तो ये माया का बंधन इतना प्रबल होता है कि मनुष्य 80 साल की उम्र में भी पहुंच जाने के बाद अपने मोह के बन्धनों को छोड़ नहीं पाता।

'बका अर्स अजीम में, कौन आवे बिना निसबत।।'

मूल संबंध के बिना कोई भी अखंड परमधाम में अपनी सुरता कर नहीं पाता। जैसे कि एक सामान्य जीव क्या सोचता है? कि इस पृथ्वी पर हम खुशहाल हो जायें लेकिन धन से क्या हो सकता है? धन से साधन इकट्ठे किये जा सकते हैं, सुख पाया जा सकता है लेकिन आनंद नहीं पाया जा सकता। सुख और आनंद में अंतर होता है। सुख क्या है? —अंतःकरण का विषय। और आनंद क्या है? — आत्मा का विषय। इंद्रियों से, अन्तःकरण से जो चीज अच्छी लगती है, उसको सुख कहते हैं। जैसे गर्मी है, पंखा नहीं है। आप को यदि पंखे की हवा या उससे भी

अच्छी ए.सी. की हवा में बैठा दिया जाए, तो आपको बहुत अच्छा लगने लगता है लेकिन आपके पास आनंद नहीं है। आपको ठंडक का सुख मिला, आनंद नहीं मिला। आनंद आत्मा की वस्तु है और उसको कोई छीन नहीं सकता।

राजकुमार सिद्धार्थ जब ध्यान में बैठे, तो उन्होंने सात वर्ष एक वृक्ष के नीचे गुजारे। बरसात भी हो रही है, शीतल हवा के झोंके चलते हैं लेकिन वहीं बैठे हैं। कोई कंबल नहीं है, कोई चादर नहीं है। और लू के थपेड़ों को भी सह रहे हैं, क्योंकि उनकी बुद्धि कूटस्थ हो गई है। वो अपने को शरीर से परे देख रहे हैं। शरीर का कोई सिनगार नहीं। कोई मोह का बंधन नहीं कि ये चीज खाने को मिले। क्योंकि वो सत्य को पाना चाहते हैं। जब आत्मदृष्टि खुल जाती है, तो वहां इन चीज़ों का कोई बंधन नहीं होता। वह सुख और दुःख दोनों से परे हो जाता है। एक सामान्य प्राणी मंदिर में जा कर के गिड़गिड़ाता है कि हे परमात्मा! मुझे बहुत दुख हो रहा है, मुझे कुछ सुख दो लेकिन एक ज्ञानी व्यक्ति क्या कहेगा? ये सुख और दुख तो दुनिया के चक्र की तरह चलते हैं? मुझे न सुख चाहिए, न आपकी सांसारिक कृपा चाहिए, मुझे तो केवल आप चाहिए, जिससे मेरी आत्मा को आनंद मिले।

परमधाम की ब्रह्मसृष्टि अपने धाम हृदय में धनी के सिवाय और किसी भी पदार्थ का अस्तित्व नहीं बसने देगी और परमधाम की तरफ ध्यान कौन करेगा? जो इस संसार से परे का है, वही परे की बात सोचेगा।

'मोमिन अर्स बका बिना, रेहे न सके एक पल।
जो हौज कौसर की मछली, तिन हैयाती वह जल।।'

हौज कौसर में क्रीड़ा करने वाली मछली, यानि परमधाम की आत्मा परमधाम को चाहेगी। खारे जल की मछली को खारे जल से निकाल कर दूध में डालेंगे तो वो उछल कर के फिर

खारे जल में भाग जायेगी। संसार के लोगों को कितनी भी परमधाम की बात सुनाइए, उनको परमधाम कभी अच्छा नहीं लगेगा। उनके जीवन का चिंतन, केवल संसार तक, शरीर तक रह जायेगा। बहुत चाहेंगे तो स्वर्ग तक, या बैकुंठ तक। इनमें कोई–कोई होगा जो बेहद की खबर लेगा। लेकिन परमधाम के अनंत प्रेम के बारे में केवल ब्रह्मसृष्टि ही कदम बढ़ायेगी। जहां केवल प्रेम है, आनंद है और कण कण में सच्चिदानंद अक्षरातीत का अनंत सौंदर्य क्रीडा कर रहा है।

जब परमधाम का वर्णन परिकरमा ग्रंथ में बताया जाता है, तो ये कहा जाता है कि वहां खूब खुशालियां हैं, जो पुखराज के बंगलों में रहती हैं, बड़ी रांग की, छोटी रांग की हवेलियों में रहती हैं। और सखियां केवल रंगमहल में रहती हैं। जैसे इस मायावी संसार में महारानी कहीं और रहती है, महारानी की सखियां कहीं और रहती हैं, उनकी सेविकायें कहीं और रहती हैं वैसे ही ये भी कह दिया जाता है कि तरह–तरह के बंदर हैं, पशु पक्षी हैं, जानवरों की असंख्य जातियां हैं और वो राजजी को रिझाते हैं। हमारे मन में शक होता है कि जब हमारे जैसा ही है, बस इतना ही अंतर है कि वहां नूरी है और यहां नूरी नहीं है। परमधाम का ही प्रतिबिंब है, संसार। ऐसा नहीं है।

'और तो कोई है नहीं, बिना एक हक जात।'

हक जात का तात्पर्य क्या है? एक बार महमंद साहब से, उनके जो चार यार थे, उन्होंने पूछा कि हजूर! बताइये, आप कहते हैं कि क्यामत आयेगी, उसमें मैं आऊंगा और आपके साथ आपके भाई आने वाले हैं। तो क्या हम आपके भाई नहीं लगते? महमंद साहब कहते हैं कि नहीं, तुम मेरे यार हो, भाई नहीं हो। इसका मतलब? भाई का तात्पर्य ये है, एक वाहेदत का संबंध है जिससे। जैसे, आम के फल को खाकर आप उस गुठली को बो देते हैं। फिर वह गुठली वृक्ष बन जाती है और उसमें फल लगने

शुरु हो जाते हैं। तो, उस एक ही वृक्ष के जितने फल हुए, संसार की मर्यादा के अनुसार भाई कहे जायेंगे। वैसे ही अक्षर की आत्मा बैठी है, महमंद के रूप में। वो कह रही है कि मेरे भाई आने वाले हैं, क्यामत के समय। भाई का मतलब? जिस अक्षरातीत का सत् अंग मैं हूं, उसी अक्षरातीत के अंग जो ब्रह्ममुनि हैं, वो ग्यारहवीं सदी में आने वाले हैं। चारों यार पूछते हैं कि हम उनमें नहीं हैं? कहते हैं कि नहीं, तुमसे तो मेरी दोस्ती है, तुमको मैंने ज्ञान दिया है। तुम मेरे भाई नहीं हो, तुम मेरे दोस्त हो! वही बात कही जा रही है,

'और तो कोई है नहीं, बिना एक हक जात।'

परमधाम में हक जात किसको कहेगें? जो राजजी का ही स्वरूप हो! वहां के बंदरों को, पशु पक्षियों को, खूब खुशालियों को कोई अलग नहीं समझना। ये लीला रूप में ही अलग–अलग रूप में दिखाई दे रहे हैं। अंतर में, सभी एक स्वरूप हैं। यही तो परमधाम की विशेषता है। हकीकत में क्या लगता है? कि राजजी श्यामाजी सिंहासन पर बैठे हैं। और शाक आदि बंदर लाते हैं और सखियां जो हैं, उसका भोजन बना कर के राजजी श्यामाजी को खिला देती हैं परमधाम में तो भूख लगती नहीं। फिर वहां रसोईघर की क्या जरूरत है? ये सारा वर्णन हमारी बुद्धि में लाने के लिए किया है। अष्ट पहर की लीला में क्या होता है? राजजी को शयन करते हुए दिखाया जाता है, घूमते हुए दिखाया जाता है, नृत्य की लीला देखते हुए दिखाया जाता है, प्रातःकाल जलपान करते हुए वर्णित किया जाता है, दोपहर का भोजन, फिर भोजन करके लेटना और तीन, साढ़े तीन बजे घूमने जाना, वनों की सवारी में। कहने को तो यही लगेगा कि ये तो मानवीय लीला है। एक मनुष्य भोजन करता है, दोपहर को भोजन करके, विश्राम करता है, फिर शाम को टहलने जाता है, रात्रि को शयन करता है। यदि अक्षरातीत

भी यही करते हैं, तो उनमें और एक मनुष्य में क्या अंतर है? ऐसा क्यों वर्णित किया गया है? इसलिए, क्योंकि परमधाम की लीला शब्दातीत है। हम जिस संसार में रहते हैं, 24 घंटे की जो हमारी दिनचर्या है, उसी दिनचर्या के साथ परमधाम की लीला को बांध दिया गया है। ताकि हम इसी बहाने राजजी से किसी न किसी रूप में जुड़े रहें। जब ध्यान होगा, प्रियतम की छवि दिख रही होगी, उस समय लीला नहीं है? मारफत में कोई लीला नहीं होती। लीला हकीकत में होती है। लीला को एक दूसरे रूप में समझिए – आंखों का काम है देखना, कानों का काम है सुनना, मुख का काम है बोलना, त्वचा का काम है स्पर्श करना। इन्द्रियों को आधार बनाकर ही तो कोई भी प्रक्रिया की जा सकती है। जैसे एक बोल रहा है, एक सुन रहा है। तो बोलने और सुनने में प्रेम का रस उमड़ जाए, तो उसको लीला कहते हैं। एक दृष्टा है, एक दृष्य है। यानि एक देखने वाला है और एक जिसको देखा जा रहा है। दोनों प्रेम की दृष्टि से देखें तो ये भी लीला का एक अंग है। उसी तरह से हमारे साथ जो 24 घंटे में घटना घटती है – स्नान, भ्रमण, भोजन, निद्रा या नृत्य की लीला देखना या झूले झूलना, उन सबकों अक्षरातीत के साथ जोड़ करके बताया गया है, ताकि हम 24 घंटों में किसी न किसी रूप में इन लीलाओं में अपने को धनी के साथ देखें, अन्यथा परमधाम की लीला को किसी भी भाषा में, किसी भी शब्द में व्यक्त करने की सामर्थ्य एक मानवीय तन में नहीं है। नारायण के पास नहीं है और तो और अक्षरब्रह्म के पास भी नहीं है। क्योंकि प्रेम शब्दातीत होता है और उस शब्दातीत लीला को किसी भी प्रकार से व्यक्त करने की सामर्थ्य इस सृष्टि में किसी के पास नहीं है।

'जात माहें हक वाहेदत'

हक जात का तात्पर्य यह है कि जो राजजी के दिल का प्रकट

स्वरूप हो। राजजी का दिल ही सभी रूपों में क्रीड़ा कर रहा है। धरती के रूप में राजजी का दिल, आकाश के रूप में राजजी का दिल।

एक–दो वर्ष का बच्चा है, सीढ़ियों पर चढ़ रहा है। अचानक गिर जाता है। मां उसकी चीखती हुई आवाज सुनती है। भागी हुई आती है और उसको सीने से लगाकर कहती है कि मेरे दिल के टुकड़े! तुझे चोट तो नहीं लगी? मां का प्रेम, प्रेम तो इस दुनिया में होता ही नहीं। मां के हृदय का स्नेह उस बच्चे के रूप में उसको दिखाई दे रहा है। मां भूखी रह सकती है, अपने बच्चे को भूखा नहीं रख सकती। स्वयं पीड़ा सह सकती है, अपने बच्चे को किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होने देगी। यानि उसके हृदय में जो कुछ प्रेम का अंश है, बच्चे के रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है। उसी तरह से अक्षरातीत का हृदय, जो मारफत स्वरूप हृदय है, वही परमधाम के 25 पक्षों के रूप में दिखाई दे रहा है। वहां की हवेलियां ईंट और सीमेंट की बनी हुई हवेलियां नहीं है जैसा कि हम समझते हैं। मानिक पहाड़ को कहने के लिए कह दिया गया है कि वो मानिक के नग का बना है, वास्तव में वो मानिक का नहीं है। धाम धनी का दिल ही मानिक पहाड़ की शोभा लिए हुए है। रंगमहल में हम तरह–तरह की शोभा का वर्णन देखते हैं। परमधाम के 25 पक्षों में फव्वारों का वर्णन देखते हैं। यमुना जी की धारा को बहता हुआ देखते है। वृक्षों पर फल लगे हुए देखते हैं। वहां की धरती को नूर से भरा हुआ देखते हैं लेकिन ये सब कुछ है समझ में आने के लिए। वास्तव में केवल राजजी के हृदय का नूर, हृदय का प्रेम, हृदय का आनंद ही 25 पक्षों में क्रीड़ा कर रहा है। और सब में एक वाहेदत है। वाहेदत का अर्थ क्या है? – एक दिली।

मान लीजिए हम कार में जा रहे हैं। सड़क पे खड़े, धूप में तपते एक भिखमंगे की पीड़ा को हम नहीं महसूस कर सकते। यदि

हम 5 स्टार होटल में भोजन कर रहे हैं, अच्छे अच्छे भोजन हमारे सामने रखे हैं, तो हमें उस पीड़ा का एहसास नहीं, कि भूख से तड़प कर मरने वाला व्यक्ति किस तरह से तड़प रहा होगा। इस संसार में यदि दो मित्रों में घनिष्ठता है तो तीसरे को अच्छा कभी नहीं लगेगा कि इनमें घनिष्ठता क्यों है? मैं ऐसा करूं कि इनमें झगड़ा करा दूं। एक पति की दो पत्नियां हो जायें, बेचारे का जिन्दा रहना मुश्किल हो जायेगा क्योंकि दोनों में कभी पट ही नहीं सकती। लेकिन परमधाम में ऐसा नहीं है। परमधाम में हर ब्रह्मसृष्टि दूसरी को अपने से करोड़ों गुणा चाहती है। संसार परमधाम से बिल्कुल उल्टा है। परमधाम में केवल वाहेदत, एक प्रेम है।

'जात माहें हक वाहेदत', जो भी ब्रह्मसृष्टियों का स्वरूप दिखाई दे रहा है, पशु पक्षियों का स्वरूप दिखाई दे रहा है, खूब खुशालियां दिखाई दे रही हैं, या जितना रंगमहल, 25 पक्ष में जो कुछ दिखाई दे रहा है, सब में राजजी का एक ही दिल क्रीड़ा कर रहा है। उसको कहते हैं वाहेदत। वाहेदत का तात्पर्य? जिसमें एक दिली है।

'वाहेदत कहिए इनको, तन मन एक इस्क।
जुदागी जरा नहीं, वाहेदत का बेसक।।'

तन एक हो, मन एक हो और सबका प्रेम बराबर हो। ये न समझिए कि केवल सखियों के पास ही प्रेम है। जितना प्रेम श्यामाजी के अंदर है, उतना ही प्रेम सखियों के अंदर है, उतना ही प्रेम खूब खुशालियों के अंदर है और उतना ही प्रेम पशु पक्षियों के भी अंदर है।

'जात माहें हक वाहेदत, हक हादी गिरो केहेलात।।'

मोटे तौर पर राजजी, श्यामाजी और सखियों को हक जात कह दिया। यानि एक ही राजजी का दिल श्यामाजी और सखियों के रूप में प्रकट हो रहा है। लेकिन वही दिल खूब खुशालियों के

भी रूप में क्रीड़ा कर रहा है और वही दिल 25 पक्षों के रूप में भी क्रीड़ा कर रहा है। परमधाम की जो यमुना जी है, राजजी के इश्क और श्यामाजी के आनंद का बहता हुआ रस है।

अक्षरातीत के हृदय का प्रेम और आनंद जब प्रवाहित हो गया, बहने लगा, क्रीड़ा रूप में, तो उसको कहते हैं, यमुना जी। केवल शब्दों की भाषा में नहीं जाना चाहिए। भावमूलकता को ध्यान में रखना होगा। जैसे एक बर्फ का पहाड़ है। उसको क्या कहेगें? घनीभूत यानि जमा हुआ। बर्फ का पहाड़ पिघल के बहने लगे तो क्या कहेंगे? ये द्रवीभूत हो गया। यानि ठोस जमा हुआ बर्फ द्रव्य के रूप में पिघलने लगा। उसी प्रकार राजजी के दिल में जो प्रेम है, जो उनके दिल में घनीभूत रूप में है, जब क्रीड़ा रूप में बहने लगता है तो उसको कहते हैं यमुना जी।

'वस्तर भूखन पेहेर के',

हर आतम की क्या भावना होती है, कि मेरे दिल में मेरा प्रियतम अखंड रूप से वास करे। अक्षरातीत के लिए वस्त्रा और आभूषणों की आवश्यकता नहीं पड़ती। जिस संसार में हम रह रहे हैं, उस संसार में अच्छे–अच्छे वस्त्राों की और आभूषणों की आवश्यकता पड़ती है। यदि हम हीरे का या मोती का या सोने का आभूषण पहन लेते हैं, तो जो हमारे शरीर में चमक नहीं रहती, तो वो चमक दिखने लगती है। आभूषणों के द्वारा हम अपने शरीर को सुंदर बनाने का प्रयास करते हैं लेकिन परमधाम में ऐसा नहीं है। परमधाम में तो राजजी के एक नख के अंदर इतना तेज है कि करोड़ों सूर्यों का प्रकाश ढ़क जाए। लेकिन हम जिस दुनियां में रहते हैं, एक आसिक का भाव यही होता है कि मेरे मासूक श्रीराजजी की शोभा अधिक से अधिक सुंदर दिखे। इसी भावना से आभूषणों का, वस्त्राों का वर्णन किया जाता है। अन्यथा परमधाम में कोई वस्त्रा और आभूषण नहीं है।

'हाथ दीजे भूखन पर, सो हाथों लगत नाहें।
पेहेने हमेसा देखिए, ऐसे कई गुन हैं इन माहें।।'
यदि आप चाहें कि उन वस्त्राों और आभूषणों को हाथ से पकड़ लें, तो हाथ में पकड़ नहीं आयेंगे, क्योंकि वे अंग की ही शोभा है। जिस आत्मा के दिल में जैसी भावना आती है, उसको राजजी के सिंगार में वैसा ही दिखने लगता है। कोई सीमा नहीं बांधी जा सकती कि राजजी की पाग सेंदुरिया रंग की है, या जामा इसी रंग का है या पिछौरी इसी रंग की है। वो तो मिहिरराज का जीव जैसे जैसे दिल में भाव लेता गया उनकी आत्मा के धाम हृदय में अक्षरातीत ने वैसा–वैसा सिंगार अवतरित करा दिया क्योंकि वाणी के सारे सिंगार राजस्थानी और गुजराती सिनगार के अनुकूल हैं। आज कल ये सिनगार बहुत कम हो गया है। हम ऐसा नहीं कह सकते कि जो आज से 400 साल पहले, 300 साल पहले सिनगार पहना जाता था, परमधाम में वो सिनगार है। वो तो एक दृष्टांत है, उपमा देकर बस बताया गया है, कि इसी भाव से किसी न किसी रूप से हम समझ जाएं।
मानव मन की कमजोरी क्या होती है? बहनों को आभूषण बहुत प्रिय होते हैं। चाहे भूखा रहना पड़े, लेकिन यदि कोई आभूषण उनको पसंद आ जाए घर में महाभारत हो जाए, लेकिन उनको चाहिए। और भाइयों को, यदि कोई अच्छा कपड़ा दिख गया तो भले ही एक वक्त भोजन मिले चाहे न मिले, कपड़ा जरूर खरीदना है। ये हमारे मन की कमजोरी हे। किसी भी तरह से हमारा मन राजजी की शोभा में लग जाए, इसलिए वस्त्रा और आभूषणों का वर्णन किया गया है। अन्यथा राजजी के नूरी अंग पर न किसी वस्त्रा की आवश्यकता है, न आभूषण की आवश्यकता है। जैसे कागज पर नक्शा बना दिया जाता है, अमेरिका का या भारत का और कह दिया जाता है कि ये भारत

है। कागज पर नक्शा जो बनाया जाता है, वो नक्शा है, वो भारत नहीं है। उसी तरह से हमारी छोटी सी बुद्धि है। उस अक्षरातीत श्री राजजी की शोभा को भला हृदयांगम कैसे करे? इसी भावों को ध्यान में रख कर के परमधाम का वर्णन किया गया है।

'अर्स बका वर्णन किया, ले मसाला इत का।'

'इत का मसाला' लेने का मतलब? कि जिस झूठी दुनिया में आप रह रहे हैं, उस झूठी दुनिया के भावों के अनुसार परमधाम की सारी लीला को, वहां की शोभा और सिनगार को हमें दर्शाया गया है ताकि हमारी बुद्धि वहां की लीला को कुछ आत्मसात् कर सके और अपने दिल में बसा सके। यदि हम ऐसा कर लेते हैं तो परिणाम क्या होगा?

'ज्यों ज्यों होवे अर्स नजीक, खेल त्यों त्यों होवे दूर।'

ये खेल है, माया का। ये हमसे छूट नहीं पा रहा। 24 घंटे में, यदि हम आधे घंटे के लिए भी ध्यान में बैठते हैं, तो हमारी आंखें तो बंद हैं लेकिन हमारा मन भाग रहा होता है। हम खेल को छोड़ना चाहते हैं, लेकिन खेल हमको नहीं छोड़ना चाहता और सच बात तो ये है कि खेल का आकर्षण इतना मीठा हो गया है कि सुंदरसाथ भी इस खेल को छोड़ना नहीं चाहते। राजजी से प्रार्थना भी करेंगे तो किसलिए? माया के लिए? माया छोड़ने के लिए कोई प्रार्थना नहीं करेगा कि राजजी, सारे बंधनों को तुड़वा दो और हमारे दिल में बस जाओ। महामति जी के धाम हृदय में अक्षरातीत विराजमान होकर हमारी आत्मा को प्रबोधित कर रहे हैं कि ब्रह्मसृष्टि का लक्षण क्या है और संसार के जीवों का लक्षण क्या है?

'वस्तर भूखन पेहेर के, मेरे दिल में बैठे आए।'

आसिक की क्या चाहत होती है? कि मेरा मासूक सबसे अधिक सुंदर दिखे। सौंदर्य की पराकाष्ठा है – अक्षरातीत। अक्षरातीत

से ज्यादा सुंदर और कोई नहीं। हमारे समाज में एक भ्रांति चल गई है, कि अक्षरब्रह्म क्या है, बालरूप है और अक्षरातीत क्या है, किशोर स्वरूप। परमधाम में कोई भी बाल रूप में नहीं है। वहां तो सभी का किशोर स्वरूप है – चाहे अक्षर ब्रह्म हो या अक्षरातीत हो। सौंदर्य की पराकाष्ठा किशोर अवस्था में ही होती है। पराकाष्ठा यानि अंतिम सीमा, अनंत, जिसके आगे कुछ न हो। राजजी से ज्यादा कोई सुंदर नहीं है, श्यामाजी से ज्यादा कोई सुंदर नहीं है। राजजी से ज्यादा कोई प्रेम करने वाला नहीं है और राजजी से ज्यादा कोई आनंद देने वाला भी नहीं है। इसलिए परमधाम में सौंदर्य सबका अनंत है। उसको बाल रूप में नहीं दर्शाया जा सकता। हां, अक्षर की क्रीड़ा बाल है। जैसे एक बालक खिलौने बनाएगा और उसको तोड़ देगा। उसी तरह से अक्षरब्रह्म के मन में इच्छा आयेगी कि सृष्टि बने, तो असंख्यों ब्रह्मांड पल में दिखने लगते हैं और तुरंत इच्छा आयेगी कि इनका लय हो जाए, तो सारे ब्रह्मांड समाप्त हो जाएंगे। जैसे समुद्र से एक साथ असंख्य बुलबुले पैदा हो जाते है और थोड़ी देर में बुलबुले पानी में डूब जाया करते हैं, वैसे ही ये क्रीड़ा चल रही है। हम तो एक छोटे से बुलबुले के संसार में रहते हैं। छोटी सी गृहस्थी होती है। थोड़ा सा धन होता है, कुछ समय के लिए यौवन आता है, फिर बुढ़ापे की चादर ओढ़नी पड़ती है, बुढ़ापे का कष्ट, मृत्यु का कष्ट, रोग का कष्ट और भी न जाने कितने कष्ट हैं, फिर भी ये तृष्णा हमारा ऐसा पीछा कर रही होती है, जो हमें धनी के चरणों से जुड़ने नहीं देती। तृष्णा के बंधनों ने हमारे मन को इतना जकड़ लिया है कि वो प्रियतम श्री राजजी के प्रति अपने को समर्पित नहीं कर पाता।

'मेरी मेरी करते दुनी जात है, बोझ ब्रह्मांड सिर लेवे।
पाउ पलक का नहीं भरोसा, तो भी सिर सरजन को न देवे।।'

'मैं' को मारने का तात्पर्य क्या है? 'जीवते मारिए आपको' यानि

जीते जी मर जाना। एक तो होता है शरीर से मरना। शरीर से व्यक्ति मर जाता है। मन से नहीं मरता। मरने के बाद भी तृष्णा बनी रहती है। जैसे, एक व्यक्ति को मांस खाने की बहुत आदत थी। यहां तक कि वो चूहे भी खा लिया करता था। चिड़ियों को भी मारकर खा जाता था। बकरे और मांस तो खाता ही था। जब मरने लगा, तो पूछा गया कि क्या इच्छा है? कहने लगा, कि अब मर तो रहा ही हूं, एक बार और मांस खा लूं। ये तृष्णा है। ये तृष्णा ही तो है जो मनुष्य को मांस खिलाती है, शराब पिलाती है, अफीम खिलाती है। बकरी के बारे में कहा जाता है कि हर पौधे को खा सकती है लेकिन बकरी तंबाकू को नहीं खा सकती। ऊंट कटीली झाड़ियों को चबा सकता है लेकिन तंबाकू को वो भी नहीं खायेगा और मनुष्य जानता है कि तंबाकू खायेंगे तो कैंसर होगा, लेकिन क्या दुनिया तंबाकू खाना छोड़ देगी या शराब पीना छोड़ देगी? यदि शराब और तंबाकू बंद कर दिए जाएं, तो लोग इसके पीछे पागल हो जायेंगे क्योंकि तृष्णा का जाल इतना है कि मनुष्य का मन इसमें फंस गया है लेकिन जिसने अपने हृदय में धनी की शोभा को बसा लिया, उसके लिए संसार का कुछ भी माएने नहीं रह जाता। वो जीते जी ही मर जायेगा। यानि शरीर से जीवित रहेगा लेकिन मन से जीवित नहीं रहेगा। खाएगा, पिएगा, लेकिन उसको संसार के आकर्षण कभी बंधन में बांध नहीं सकते। इसको कहते हैं – 'जीवते मारिए आपको, सब्द पुकारत हक।' अक्षरातीत की वाणी क्या कह रही है? जीतेजी मर जाइए। 'जो न मरेगें मोमिन, तो क्या मरेगें मुनाफक।।' ब्रह्मसृष्टियों से ही आशा की जाती है कि वो राजजी के प्रेम में इतने डूब जाएं कि संसार की कोई भी तृष्णा उनका पीछा न करे।

'वस्तर भूखन पेहेर के, मेरे दिल में बैठे आए।
हकें सोई किया अर्स अपना,

अक्षरातीत का अर्स कहां है? ब्रह्मसृष्टि का दिल ही धनी का अर्स होता है। यदि हम सोचें कि हम हीरों का कोई मंदिर बना दें, तो वहां राजजी बैठ जाएंगे, तो ये संभव नहीं है। अक्षरातीत तो प्रेम चाहते हैं। 'ल्याओ प्यार करो दीदार'। और अक्षरातीत कहां है? 'जित निसबत तित सब।'

निसबत हक की जात है, निसबत में इस्क।
निसबत वास्ते इलम, इत आया बेसक।।'

जहां ब्रह्मसृष्टि का दिल है, वहीं धनी के चरण कमल है। सूर्य अपनी किरणों से कभी अलग नहीं हो सकता, चंद्रमा अपनी चांदनी से अलग नहीं हो सकता, सागर अपनी लहरों से अलग नहीं हो सकता, फूल सुगंध से अलग नहीं हो सकता। वैसे ही अक्षरातीत की भी शक्ति नहीं कि वो अपनी आत्माओं से अलग हो जायें। इस मायावी जगत में भी अक्षरातीत ब्रह्मात्माओं के धाम हृदय में विराजमान हो कर बैठे हैं। इसलिए कहा जाता है–

'ऊपर तले अर्स ना कह्या, अर्स कह्या मोमिन कलूब।'

इसलिए, हमें हर हालत में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हम मन, वाणी और कर्म से कभी भी किसी का दिल न दुखायें। यदि हम किसी का दिल दुखाते हैं तो इसका सीधा साधा अर्थ है कि हमारी आत्मा अभी जागृत नहीं हुई। केवल शब्दों को पढ़ लेने से जीवन का लक्ष्य पूरा नहीं हो जाता। शब्दों में जो निहित भाव है, उसको आत्मसात् करना होगा कि हमारी आत्मा उस प्रियतम परब्रह्म की शोभा को अखंड रूप से बसाये रखे और जब प्रियतम का प्रेम दिल में बस जाता है तो संसार अपने आप छूट जाएगा।

'हकें सोई किया अर्स अपना, रूह टूक टूक होए बल जाए।।'

अब धाम धनी मेरे धाम हृदय में विराजमान हो गए हैं, इसलिए मेरी आत्मा श्री राजजी पर बलि–बलि जाती है। बलिहारी का मतलब? सर्वस्व समर्पित कर देना। जिस परमहंस ने अपनी आत्मा के धाम हृदय में धनी की शोभा को बसा रखा है, उसके

लिए संसार का क्या माएना? हीरे मोती के महल उसके लिए कोई माएने नहीं रखते। एक संसार का सामान्य प्राणी धन के लिए चिंतित हो सकता है, कोठी बंगलों के लिए चिंतित हो सकता है लेकिन जिसके हृदय में प्रियतम परब्रह्म ही रमण कर रहा है, उसको संसार की क्या चिंता है? इतिहास की एक घटना है –

नदी के तट पर एक तेजस्वी ब्राह्मण रहा करते थे। उनके पास सिकंदर का एक सैनिक आता है, कहता है कि विश्व विजेता, सिकंदर आ रहे हैं, आप उनके पास चलिए। ब्राह्मण ने कहा कि मैं क्यों जाऊं? फिर दूसरा सैनिक आता है, वो भी कहता है कि आपको हमारे सम्राट के पास चलना होगा। ब्राह्मण ने मना कर दिया और थोड़ी देर के बाद सिकंदर भी आ गया। सिकंदर कहता है कि मेरे गुरुदेव ने बुलाया है, आपको मेरे साथ चलना पड़ेगा। ब्राह्मण के मुख से निकलता है कि सिकंदर! तुम मेरे शरीर को ले जा सकते हो, मेरी आत्मा को नहीं ले जा सकते। सिकंदर भौंचक्का रह गया, कि ये तपस्वी कमर में भोजपत्रा पहना है, इसके पास कोई कपड़ा नहीं, छोटी सी कुटिया में रहता है, इसके पास कोई भोजन भी नहीं रखा, संसार का एक पैसा इसके पास नहीं और मुझे जवाब दे रहा है। मेरा नाम सुनकर दुनिया कांपती है और ये मेरे मुंह पर कह रहा है, सिकंदर! तुम मेरे शरीर को ले जा सकते हो, मेरी आत्मा को नहीं। सिकंदर नतमस्तक हो गया कि इसके अंदर कोई आलौकिक शक्ति है जो इसे भयभीत नहीं होने दे रही। वैसे ही जिस आत्मा के धाम हृदय में धनी के चरण कमल बस जायेंगे, संसार का अस्तित्व उसके लिए समाप्त हो जायेगा।

'दई बड़ाई मेरे दिल को, हक बैठे अर्स कर।'

हमारे दिल की शोभा क्या है? हमारे दिल में धाम धनी के चरण कमल पड़े, ये ही हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि है। हमने अरबों

खरबों कमा लिया, इस देश के प्रधानमंत्री बन गए, राष्ट्रपति बन गए, तो ये हमारी उपलब्धि बड़ी नहीं है। ये तो माया की उपलब्धियां है। राष्ट्रपति बनेंगे पांच साल के लिए, 10 साल के लिए, खरबोपति बन जायेंगे, तो क्या कर लेंगे? कुछ अच्छा खा पी लेंगे, पहन लेंगे, आखिर सब कुछ तो यहीं छूट जाना है लेकिन जिस दिल में धनी के चरण कमल पड़ गए, उससे बड़ा भाग्यशाली कोई नहीं होगा। इसलिए महामतिजी की आतम कह रही है कि हे मेरे धाम धनी! आपने मेरे दिल को ये शोभा दी है कि मेरे धाम हृदय में आप विराजमान हो गये हैं।

'अपनी अंगना जो अर्स की, रूह क्यों न खोले नजर।।'

हे मेरे धाम धनी! मैं आपकी अर्धांगिनी हूं और इस मूल संबंध से आप मेरे धाम हृदय में आ कर के विराजमान हो गए हैं, तो मेरी आत्मदृष्टि क्यों नहीं खुलेगी? हमारी ये बाहर की आंखे, बाहरी संसार को देख रही होती हैं। जिसके दिल में धनी के चरण कमल बस जाते हैं, उसकी आत्मिक दृष्टि खुल जाती है, और वो संसार से पूर्णतया अलग हो जाती है।

एक बार अकबर ने अपनी सभा में घोषणा की कि बताओ, परमात्मा क्या करता है? किसी भी दरबारी को इसका उत्तर सूझ ही नहीं पड़ा। अचानक बीरबल की प्रेरणा से एक लड़का सामने खड़ा हो गया। कहा, कि बादशाह, आपके प्रश्नों का उत्तर मैं दूंगा। बादशाह ने कहा कि बोलो! छोटा सा बच्चा कहता है कि बादशाह! ज्ञान लेने वाला बड़ा होता है या देने वाला? बादशाह ने कहा कि देने वाला। बच्चे ने कहा कि जब देने वाला बड़ा होता है, तो आप खुद इसका पालन नहीं कर रहे हैं। बादशाह समझ गया और वो नीचे उतर आया और बच्चा जाकर अकबर के सिंहासन पर बैठ गया। बच्चे ने पूछा, कि अब आपको पता चला, कि परमात्मा क्या करता है? राजा से कंगाल बना देता है और कंगाल से राजा बना देता है। अभी, आप

सिंहासन पर बैठे थे, अब आप मेरे नीचे बैठे हैं और बादशाह की जगह पर मैं बैठा हूँ। यही परमात्मा का काम है। यानि, सारी सृष्टि परिवर्तनशील है। मनुष्य यही सोचता है कि मेरा शरीर अखंड है, मेरी धन दौलत अंखड है, मेरा रूप अखंड है, मेरी प्रतिष्ठा अंखड है। ये तो नश्वर है, और बदलता रहा है, बदलता रहेगा। केवल धाम धनी का प्रेम अखंड है और जिसने अपने दिल में प्रियतम की शोभा को बसा लिया, वो धन–धन हो जाता है।

जब गौतम बुद्ध ने अपना शरीर छोड़ा, दाह संस्कार हो गया, तो उनकी हड्डियों के लिए झगड़ा मच गया। हर राजा कहता था कि बुद्ध की पवित्रा अस्थियां मैं ले जाऊंगा। झगड़ा होने की नौबत आ गई। फिर किसी तरह से शांत कराया गया और चारों दिशाओं के राजाओं को उनकी हड्डियां बांट दी गई। कल्पना कीजिए कि यदि राजकुमार सिद्धार्थ चक्रवर्ती सम्राट बनकर संसार के सुखों में मग्न होते, तो उनकी हड्डियों के लिए कभी भी झगड़ा नहीं होता। लेकिन बुद्ध ने त्याग किया, तप किया, संसार को ठोकर मारी। आज संसार बुद्ध के चरणों में नतमस्तक होता है। वैसे ही परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों से यही आशा की जाती है कि वो अपने दिल में धाम धनी को बसाये और संसार को बताये कि 'हक लज्जत आई मोमिनों, जिन दुनी करी मुरदार।'

महामत कहे बोलूं हुकमें, अर्स मसाला ले।
दरगाही रूहन को, सुख असल देने के।।

मुख मेरे मेहेबूब का'

अक्षरातीत धाम धनी महामति जी के धाम हृदय से परमधाम की आत्माओं को असल सुख देने के लिए अपने मुखारबिंद की शोभा का वर्णन करवा रहे हैं। असल सुख का तात्पर्य क्या है? परमधाम का वो सुख जिसमें परमधाम की आत्मायें अनादि काल से डूबी रहती रही हैं और इस मायावी जगत में आने के बाद उससे वंचित हो गई। हम इस झूठे संसार में देखते हैं, एक तृष्णा का प्रवाह चला जा रहा है। बच्चे होते हैं, जवान होते हैं, बूढ़े होते हैं। फिर शरीर को छोड़ कर चले जाते हैं। संसार के सुखों में हम शांति खोजने का प्रयास करते हैं। सगे संबंधियों में प्रेम खोजने का प्रयास करते हैं लेकिन एक अक्षरातीत है, जो पल–पल हमारे साथ रहता है। हमें अच्छे से अच्छे स्वादिष्ट भोजन करा दिया जाए तो भी शांति नहीं मिल पायेगी। अच्छे से अच्छे हीरे मोतियों के वस्त्रा आभूषण पहना दिये जाएं तो भी पूरी शांति नहीं मिल सकती। संसार में जितने हीरे, मोती रत्न हैं सबका मालिक बना दिया जाए, तो भी शांति नहीं मिल पायेगी। हमें आठों सिद्धियां मिल जायें, हम हवा में उड़ने लगे, एक साथ हजारों शरीर धारण करने लगे, लेकिन जिसको शाश्वत शांति कहते हैं, शाश्वत आनंद कहते हैं, वह राजजी के सिवा कोई भी देने वाला नहीं है। और संसार इसी में भागा जा रहा है। जितना बड़ा शहर, उतनी ही भौतिकता की आंधी। पश्चिमी दुनियां में क्या है? पत्नी भी कमायेगी, पति भी कमायेगा, बच्चे भी कमायेंगे, क्योंकि एक होड़ बनी हुई है। हमारे पास इतना धन होना चाहिए, क्योंकि पड़ोसी के पास इतना धन है। हमारे पास सुख सुविधायें होनी चाहियें। आत्मीयता और संवेदनशीलता मनुष्य के अंदर से मरती जा रही है। उसका स्थान लेती जा

रही है, एक भौतिक चकाचौंध जो किसी को भी शांति देने वाली नहीं है। परमधाम की आत्मायें इस झूठे मायावी जगत को देख रही है। उनको चाहिए, असल का सुख। ऐसा सुख जो अखंड हो, जिसमें कभी विकृति नहीं आये। संसार में जो कुछ भी है, उसमें विकृति आती है। हम महल बनायेंगे, कुछ समय के बाद वो पुराना पड़ना शुरु हो जायेगा। हमारे शरीर का सौंदर्य नष्ट होना शुरू हो जायेगा। कपड़े जो हम अच्छे अच्छे पहनते हैं, वो भी नष्ट होना शुरु हो जाते हैं लेकिन एक स्वरूप है, जो हमारे हृदय मंदिर में इस तरह से बसा रहता है कि एक पल के लिये भी वो अपने को हमसे अलग नहीं करता। हां, हम लोग अलग कर देते हैं ये सबसे बड़ी भूल हो रही है। उसके एक नख के अंदर करोड़ों सूर्यों का प्रकाश है। इतना सौंदर्य का सागर है कि इस दुनियां में जो भी सौंदर्य है, उसको इकट्ठा कर दिया जाए, तो उसके सौंदर्य के सागर की एक बूंद में भी वो नहीं समा पायेगा। इतना प्रेम है उसके पास कि संसार के सारे प्रेम को इकट्ठा कर दिया जाये तो उसके प्रेम के सागर की एक बूंद भी नहीं बन सकता और हंसी क्या है? कि वो अंदर बैठा रहता है, हम उसको जान नहीं पाते, उसको देख नहीं पाते और वो हमारी भूलों पर हंसता रहता है कि इन पागलों को मैं क्या कहूं, इनके अंदर मैं बैठा रहता हूं, ये मुझको याद नहीं करते, मैं इनकों देखता रहता हूं, ये मुझे देखना नहीं चाहते। हम नींद के घंटे कितने चाव से गुजार देते हैं, बातचीत के घंटे कितने आराम से गुजार देते हैं, सगे संबंधियों के मोहजाल में फंसकर हम घंटों कैसे बिता देते हैं लेकिन वो क्षण सबसे अधिक हमारे लिए कल्याणकारी होता है जब हम अक्षरातीत की शोभा में अपने को डुबा देते हैं। अभी जब शिविर लगा था, उसमें सुंदरसाथ ने अनुभव किया होगा कि सबको भुला कर कुछ पलों के लिए धनी की शोभा में डुबो देने का आनंद क्या होता है?

निःसंदेह संसार में अरबोपति बहुत ज्यादा हैं, खरबोपति लोग हैं, सुखों के सागर में झीलते हैं, लेकिन उनके पास शांति नहीं है। एक तृष्णा का बोझ वो ढ़ो रहे हैं, ऐसी हिरस हवा जो कभी भी पूर्ण होने वाली नहीं है। लेकिन जिसके पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं है शरीर पर कपड़े भी नहीं होते हैं, लेकिन अपने हृदय मंदिर में जिसने उस युगल स्वरूप को बसा लिया होता है, उसके पास आनंद का ऐसा सागर होता है जो इस ब्रह्मांड को बनाने वाले नारायण के पास भी नहीं है। 'दरगाही रूहन को, सुख असल देने के'– परमधाम की आत्माओं को अखंड सुख देने के लिए महामति जी कह रहे हैं कि मैं अब राजजी की शोभा का वर्णन करने जा रहा हूं। किस तरह से? 'अर्स मसाला ले'। वर्णन करना है नूरी सिनगार का और दृष्टांत देना है यहां से ताकि किसी भी तरह से वो शोभा हमारे दिल में बस जाए।

'जिन जानो ए बरनन, करत आदमी का।
ए सब थें न्यारा सुभान जो, अर्स अजीम में बका।।'

जब राजजी के सिनगार का वर्णन हो, तो ऐसा नहीं समझना चाहिये कि किसी इंसान के सिनगार का वर्णन हो रहा है। क्योंकि राजजी के मुखारबिंद की शोभा में आंखों का वर्णन होगा, नासिका का वर्णन होगा, होठों का वर्णन होगा, गालों का वर्णन होगा, कंठ का वर्णन होगा और ये प्रकरण ही है–खभे कंठ मुखारबिंद सोभा समूह–मंगला चरन। कंधे से लेकर गले और मुखारबिंद का जो वर्णन है, इस प्रकरण का मूल विषय है। उसके पहले का यह मंगलाचरन कहा जा रहा है। महामति जी की आत्म कहती है–

'मुख मेरे मेहेबूब का, रंग अति उज्जल गुलाल।'

'मुख मेरे मेहेबूब का', इस एक चरण में सब कुछ कह दिया । ये भी तो कहा जा सकता है, मुख मेरे पूज्य का, मुख मेरे आराध्य का। पूज्य वो होता है जिससे एक दूरी होती है। स्वामी और

सेवक का भाव होता है, वो प्रभु होता है, वो पूज्य होता है। एक आराध्य होता है, जिसकी भक्ति की जाती है। उसकी याद में खोया जाता है और एक वो होता है जिसको कहते हैं प्रियतम, जिसको चाहा जाता है। आत्मा अपने सर्वस्व को पाना चाहती हे। सर्वस्व का अर्थ क्या होता है? जिसके बिना अपना अस्तित्व ही नहीं हो। अराधना करने वाला अपने आराध्य के बिना कुछ पल जीवित रह सकता है। लेकिन जो जिसका सर्वस्व है, उसके बिना तो वो रह ही नहीं सकता। इसलिए राजजी कहते हैं, 'तुम रूहें मेरे तन हो।' 'तुम मेरे तन हो' यानि तुम्हारे अंदर मैं हूं। तुम मेरी आत्मा हो। आत्मा होने का तात्पर्य क्या है? तुम्हारे बिना मेरा अस्तित्व नहीं है लेकिन हम राजजी के बिना रह सकते हैं, राजजी हमारे बिना नहीं रह सकते। इस संसार में सबको अपने संसार के रिश्ते कितने प्रिय होते हैं। भाई बहन के रिश्ते, माता–पिता के रिश्ते, पिता–पुत्रा के रिश्ते, पति–पत्नी के रिश्ते, ये सारे रिश्ते काफी मोहक होते हैं। मैं ये नहीं कहता कि इन रिश्तों को तोड़िये, लेकिन पहला रिश्ता तो उस अक्षरातीत से रखिए जो आपकी आत्मा का सर्वस्व है। रिश्तों को निभाइए, लेकिन उसमें उलझिए नहीं क्योंकि ये रिश्ते एक ना एक दिन आपसे अलग होते जायेंगे। सभी रिश्ते टूट जायेगें संसार के लेकिन अक्षरातीत से जो आपका प्रेम का रिश्ता है, अनादिकाल से मूल संबंध की जो डोर है, वो कभी भी टूटने वाली नहीं है। मौत भी नहीं तोड़ सकती। मौत इस शरीर को अलग कर देगी। आपकी आत्मा से धनी के रिश्ते को नहीं तोड़ सकती और ये भी है कि मौत के आते ही संसार के रिश्ते टूट जायेंगे। शरीर छूटने के बाद पत्नी कुछ दिनों तक रोएगी। भाई–बंधु कुछ दिनों तक रोएंगे। माता कुछ दिन तक रोएगी। कुछ दिन के बाद सब भुला देंगे कि इस घर में कभी कुछ हुआ था लेकिन वो ऐसा शख्स है, जो हमारे धक्का देने पर भी हमारे

दिल से निकलने वाला नहीं है। हम उससे मुंह फेरे रहते हैं, फिर भी वो हमारी तरफ देखता रहता है और जबरन आ करके हमारे दिल में बैठा रहता है और वो चाहता है कि मेरी आत्मायें मुझे देखें और संसार को छोड़ दें। वाणी का उद्देश्य बस इतना होता है। वाणी हमें प्रेम का पाठ पढ़ाती है और हम राग द्वेष का पाठ पढ़ते हैं क्योंकि संसार में तृष्णा है। अधिक से अधिक धन, अधिक से अधिक सुख सुविधाएं और अधिक से अधिक सांसारिक मोह हमें धनी के प्रेम से जुदा कर देता है। राजा जनक सिंहासन पर बैठे रहते थे, महाराजा छत्रासाल भी सिंहासन पर बैठे रहते थे, लेकिन इनको संसार छू नहीं गया था। गृहस्थ जीवन ऐसा होना चाहिए जैसे कमल का फूल पानी से तो बढ़ता है, लेकिन पानी उसको डुबो नहीं पाता। परमधाम की ब्रह्मवाणी हमें उसी राह पर ले जा रही है। 'घर ही में न्यारे रहिए, कीजे अंतर में वास।'

हमारा शरीर घर–गृहस्थी के बंधनों से बंधा पड़ा है। हमारी दृष्टि इसमें नहीं फंसी होनी चाहिए। 'वो खेले प्रेमें पार पियासों, देखन को तन सागर माहीं।' हमारी सुरता परधाम के 25 पक्षों में रमण करे तब तो इस जीवन की सार्थकता है और महामति जी की आत्म कह रही है कि मेरे प्रियतम का मुखारबिंद कैसा है? 'प्रियतम' शब्द में सब कुछ आ जाता है। सूरज से तेज निकाल दीजिए, सूरज में क्या बचेगा? चंद्रमा से चांदनी निकाल दीजिए, दीपक के अंदर से प्रकाश निकाल दीजिए, तो क्या उसको दीपक कह सकते हैं? फूल से सुगंध निकाल दीजिए, शक्कर से मिठास निकाल दीजिए, तो क्या उसको शक्कर कहेंगे? उसी तरह से जीवन की सुगंधि है परमधाम का प्रेम। और वो हमारा सर्वस्व है। वो हमारा पूज्य नहीं है, आराध्य नहीं है, आदरणीय नहीं है। संसार में क्या होता है? शंकर जी का मंदिर है, हनुमान जी का मंदिर है। जनता जाती है, मत्था

टेकती है, मिठाई का पैकेट पकड़ा देती है। अपनी कुछ मन्नत मांग लेती है और खुशी खुशी घर आती है कि भगवान ने हमारी प्रार्थना सुन ली है। अब हमारी माया की कामना पूरी हो जायेगी। राजजी कहते हैं कि मेरी राह ये नहीं है। मुझे पाने के लिए तो तुम्हें केवल प्रेम करना होगा, विशुद्ध प्रेम जिसमें तुम खुद को मिटा दो। यदि तुम संसार की माया मांगोगे, सिद्धियां मांगोगे, तो ये मेरे लिए कुछ भी नहीं है। एक पल में सब कुछ मिल जायेगा लेकिन ये तुम्हारे और मेरे बीच में एक दरार डाल देगी। कल्पना कीजिए, आपको योगीराज बना दिया गया, आप सारी दुनिया को दिखाते हुए आकाश में उड़ने लगे, एक साथ हजारों शरीर आपने धारण करना शुरू कर दिया, फिर परिणाम क्या होगा? दुनिया आपके पीछे पागल होकर के, हाथ धो करके पड़ जायेगी कि हमारी ये कामनाएं हैं, हमारी ये कामनाएं हैं। सवेरे आप उठेंगे, आपके दरवाजे पर हजारों लोग खड़े रहेंगे आपसे आशीर्वाद लेने के लिए। जैसे सांई बाबा ने लोगों की सांसारिक इच्छाएँ पूरी की, दुनिया ने उनको भगवान मानना शुरू कर दिया। उनको सांई बाबा से प्रेम नहीं है। सांई बाबा उनकी सांसारिक इच्छाओं को पूरी करते हैं, इससे मतलब है दुनिया को। आपको भी ऐसा सिद्ध योगी बना दिया जाए तो दुनिया आपकी इतनी इज्जत करने लगेगी कि वही प्रतिष्ठा आपके और धनी के बीच में बाधक बन जायेगी। आप धनी को रिझा नहीं सकते। धनी के प्रेम में आप डूब नहीं सकते तो जो धनी का प्रेम मिलना था, जो उस प्रेम का आनंद मिलना है, जो अक्षरातीत के हृदय रस से बहता है, वो नहीं मिल पायेगा। यही कारण है कि प्रवाही समाज में चमत्कार दिखाने वाले बहुत से महात्मा हो जाते हैं, वाणी का ज्ञान ग्रहण करने के बाद यदि आप उनकी नकल करके चमत्कार दिखाना चाहो, तो आप नहीं दिखा पाओगे। हां, जहां आवश्यकता होगी, अपने आप

चमत्कार होते रहेंगे। संसार की राह अलग है, अपनी राह अलग है। महामति जी की आत्म कह रही है कि मेरे प्रियतम का मुखारबिंद कैसा है?

'रंग अति उज्जल गुलाल।' सफेदी में लालिमा, सौंदर्य की पराकाष्ठा है। इसको कहते हैं स्याम रंग। स्याम स्यामा इसलिए कहते हैं कि जो रंग श्यामाजी का है, वही रंग राजजी का है। किसी का रंग बिल्कुल लाल हो, वो भी अच्छा नहीं लगेगा, बिल्कुल सफेद रंग हो, वो भी अच्छा नहीं लगेगा।

'बरनन करो रे रूहजी, मासूक मुख सुन्दर।
कोमल सोभा अलेखे, खोल रूह के नैन अंदर।।

उस सौंदर्य में सब कुछ भरा है। कोमलता भरी है, सौंदर्य का आकर्षण भरा है और प्रेम भी भरा पड़ा है। कश्मीर का कोई व्यक्ति खूबसूरत हो चेहरे से, और उसका चेहरा कठोर हो, तो वो किसी को आकर्षित नहीं कर सकता। चेहरे पे कोमलता हो, लेकिन यदि प्रेम नहीं हो, तो भी वो आकर्षित नहीं कर सकता। आकर्षण के लिए संवेदनशीलता जरूरी है, हृदय में उफान लेता हुआ प्रेम जरूरी है, और चेहरे की कोमलता जरूरी है अन्यथा क्या होता है, स्विट्जरलैंड में गाय बहुत दूध देती है लेकिन एक बार दुहने के बाद उनको कसाई खाने में भेज दिया जाता है। जो कसाई वहां रहता होगा, काला कलूटा नहीं होता होगा, वो भी गोरा चिट्टा ही होता होगा लेकिन जब गायों को काटता होगा, तो उसके चेहरे पर क्रूरता के भाव होते होंगे। चेहरे में सौंदर्य है लेकिन माधुर्यता नहीं है, प्रेम नहीं है, संवेदनशीलता नहीं है। अक्षरातीत का मुखारबिंद कैसा है? मुस्कराता हुआ मुखारविंद ऐसा है जो कोमलता की पराकाष्ठा है, सौंदर्य की पराकाष्ठा है, और वो संवेदनशीलता की पराकाष्ठा है। क्या कह दिया है धाम धनी ने?

'रेहे न सको मैं रूहों बिना, रूहें रेहे न सकें मुझ बिन।

जब पेहेचान होवे वाको, तब सहें न बिछोहा खिन।।'
हमें राजजी से अलग रहना क्यों अच्छा लगता है? क्योंकि हमें राजजी की पूरी पहचान नहीं है। हम वाणी जरूर पढ़ते हैं, वाणी की चर्चा भी कर सकते हैं, हर चौपाई का अर्थ भी जानते हैं, लेकिन पूरी पहचान नहीं है। 'एक गुण जो याद आवे, तो तबहीं उड़े अरवाए।' राजजी के गुण कितने हैं? अनंत! और अनंत गुणों में से केवल एक गुण की भी याद आ जाए तो हमारी आत्मा इस झूठे संसार को देखना ही नहीं चाहेगी। जैसे आपके दरवाजे पर एक भिक्षुक आकर के खड़ा हो गया है। आपको मालूम है कि भिक्षुक आया है। आप एक बार अन्न नहीं देंगे। दरवाजा बंद करेंगे। बाहर से आवाज आती है। दुबारा टाल मटोल किया, 10 मिनट बीतेंगे, 15 मिनट बीतेंगे। अंत में आपका कितना ही कठोर दिल है, आप उस भिक्षुक को देखना नहीं चाहेंगे, लेकिन कुछ न कुछ, दो मुट्ठी अन्न ले जा करके आपको देना ही पड़ेगा। क्योंकि आपको मालूम है कि वो दरवाजे पर खड़ा हुआ है और जब तक हम देंगे नहीं, वो जायेगा नहीं। एक भिक्षुक के लिए तो सहन नहीं हो सकता। और अक्षरातीत क्या है? उन्होंने तो आसन जमा लिया है आपके अंदर। 'इन गुन्हेगारों के दिल को, अर्स कर बैठे मेहेरबान।' हमारा जीव गुनाह पर गुनाह करता जा रहा है। झूठ बोलता है, राग द्वेष में फंसा होता है। न जाने कितने विकारों में फंसा होता है। राजजी तो बस इतना चाहते हैं कि वाणी का ज्ञान पाने के बाद आत्मा अपने दिल में धनी की शोभा को बसाये। किरंतन का एक प्रकरण आता है, गुजराती में, जिसमें कहा गया है–
'नित उठी आंगनडे ऊभो, आलज करे अमारी।'
गोपियां कहती हैं, कन्हैया! तू जबरन प्रतिदिन मेरे आंगन में आ जाता है और तरह–तरह की लीलायें करता है। आंगन क्या है? आत्मा का दिल ही वो आंगन है जिसमें हमारे धाम धनी अखंड

रूप से वास करते हैं। यदि हम अपने गुनाहों को देखें तो हम स्वर्ग में भी जाने के अधिकारी नहीं हैं। युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा को भी कुछ देर नरक में जाना पड़ा था, क्योंकि महाभारत के युद्ध में उन्होंने झूठ बोल दिया था। हम लोग तो प्रतिदिन झूठ बोलते हैं। रागद्वेष के बंधन में रहते हैं। हरिश्चन्द्र जैसे सत्यवादी हम नहीं हैं। ध्रुव जैसे तपस्वी त्यागी हम हैं नहीं। इनको बैकुंठ से ऊपर का दर्जा नहीं मिलता तो हमें कैसे मिल सकता है लेकिन हम बेहद से भी परे परमधाम की बात इसलिए करते हैं क्योंकि हमने अक्षरातीत से अपना संबंध जोड़ा है।

'कई देव दानव हो गए, कई तीर्थंकर अवतार।
किन सुपने न श्रवनों, सो इत मिल्या नर नार।।'

बड़े–बड़े देवता हो गए, जिनके पास बहुत विशाल शक्ति रही। बड़े–बड़े दानव हो गए, रावण ने देवताओं को भी बांध लिया था। सारे विश्व पर उसका डंका बज रहा था। बड़े–बड़े तीर्थंकर हो गए। 24 अवतार हो गए जिनके जमाने में सारा संसार उनके पदचिन्हों पर चलता रहा। जब सिद्धार्थ बुद्धत्व प्राप्त करके चले तो उनके पीछे हजारों लोगों की भीड़ चल गई। महावीर स्वामी के साथ हजारों लोगों की भीड़ चल गई लेकिन ये बड़े–बड़े देवता, तीर्थंकर, अवतार, दानव स्वप्न में भी अक्षरातीत के बारे में जान नहीं पाये थे और हमसे गुनाह क्या हो रहा है कि वो अक्षरातीत बिन बुलाये बिन चाहे हमारे हृदय मंदिर में बैठा रहता है और हमारा हृदय इतना कठोर होता है कि हम उसकी तरफ देखना पसंद नही करते। आशिक को क्या चाहिए? माशूक का प्रेम।

'रोम रोम बीच रमि रह्या, पिउ आसिक के अंग।
इस्कें ले ऐसा किया, कोई हो गया एकै रंग।।'

अक्षरातीत पल पल हमको देख रहे हैं, इसका तात्पर्य क्या है? उनके रोम रोम में हम बसे हैं। हमारे राम रोम में राजजी नहीं

बसे। यदि हमारे रोम रोम में भी राजजी बसे होते तो हम संसार में इतने डूब नहीं जाते। वो आशिक है और वो हमको देख रहे हैं। अब हमारा कर्त्तव्य ये होता है कि हम राजजी को उसी भावना से देखें जिस भावना से वो हमको देख रहे हैं। सागर–सिनगार की वाणी हमको परमधाम की वही राह दिखा रही है कि इस मायावी जगत में संसार के लोग जहां पाठ पढ़कर के, मंत्रों का जप करके, पूजा करके सन्तुष्ट हो जाते हैं, हमारी वो राह नहीं है। न जाने लाखों करोड़ों के कलश चढ़ाये जाते हैं, लाखों करोड़ों के मंदिर बनाये जाते हैं, लाखों रूपये के बागे बनाए जाते हैं। सब कुछ होता है लेकिन सबका ध्यान माया से हटाकर युगल स्वरूप की शोभा में डुबोने का प्रयास बहुत कम होता है। जहां देखिये, वहां शोर शराबा, केवल बहिर्मुखी साधना जो संसार के लोग करते हैं। वाणी का कथन एक ही है – संसार से नजर हमारी हटे और धनी के मुखारबिंद में डूब जाए। उस मुखारबिंद की शोभा को देखकर हमें संसार देखने की इच्छा ही नहीं रहेगी।

'कोई खाली न गया इन खिलवतें, कछू लिया हक का भेद।
सो कहूं जाए ना सके, पड्या इस्क के कैद।।'

वो तो प्रेम के बंधन में आ जाएगा जिसने एक बार भी राजजी के मुखारबिंद की झलक पा ली। सुंदरसाथ यही से कहना शुरू कर देते हैं कि हम राजजी की चितवनि तब करें जब एक बार राजजी मुखारबिंद दिखा दें। ये तो सौदागिरी है। जैसे आफिसों में आजकल काम कराना होता है, तो हस्ताक्षर करवाना हो, तो मेज के नीचे से चुपके से पैसा हाथ में पकड़ाना पड़ता है, तब वो क्लर्क जो है कुछ काम करता है। हम भी पहले शर्त रखते हैं कि राजजी पहले मुखारबिंद दिखायें तो याद करेंगे, नहीं तो हमारे दिल में बैठे रहें, हम उनको देखना नहीं चाहेंगें ऐसा नही है। वो तो पल–पल देख रहे हैं। वाणी का सार एक ही है –

'सेहेरग से नजीक हक' यानि राजजी प्राण की नली से भी ज्यादा नजदीक है और उनकी नजर और कहीं नहीं है, केवल हमारी तरफ है। जैसे सूर्य अपने तेज को नहीं छोड़ सकता, सागर अपनी लहरों को नहीं छोड़ सकता, हाथ अपनी उंगलियों को नहीं छोड़ सकता। उसी तरह से अक्षरातीत भी हमकों छोड़ने वाले नहीं हैं। हां, हम छोड़ सकते हैं। हमारी आत्मा तो नहीं छोड़ेगी लेकिन हमारी आत्मा जिस जीव पर बैठी है, वो जीव माया के सुखों को ही सब कुछ माने बैठा है और उसको प्रबोध करने के लिए ही ये वाणी दी जा रही है कि हे जीव! तू इसमें मत भूल क्योंकि ये संसार दिखने में आकर्षक है लेकिन इसमें सार कुछ भी नहीं है। कल्पना कीजिए, आपने हीरे मोतियों का महल बना लिया, 56 प्रकार के भोग आप खा रहे हैं, फूलों की शैय्या पर आप सो रहे हैं, लेकिन इसका अंतिम परिणाम क्या होगा? अंतिम परिणाम तो यही होगा कि एक दिन जब पक्षी पिंजरे से उड़ जायेगा, तो इन सब को छोड़कर चले ही जाना पड़ेगा। लेकिन जिसने ये विवेक ले लिया, वो रात्रि को सोने से पहले अपने प्रियतम को दिल में बसा कर के सोता है कि यदि मेरी आंखें खुले तो केवल उसकी याद में खुला करें। जहां दिल में प्रियतम बसा होता है, तो गिरने पर माता–पिता की याद नहीं आती, पहली याद राजजी की तरफ आए क्योंकि वो ही हमारा सर्वस्व है। उसके सिवा जो भी है, वो कुछ समय के लिए रिश्ते नाते बने हुए हैं और ये रिश्ते नाते एक दिन अलग होते जाएंगे समय के प्रवाह में। जो हमारा धाम धनी है, हम चाहें भी कि वो हमको छोड़े तो वो हमको छोड़ने वाला नहीं है। एक बेशर्म पौधा होता है जिसको बेहया कहते हैं उसको मिट्टी में गाढ़ने की जरूरत नहीं होती। मिट्टी के ऊपर बस पड़ा भर रहे, सूखेगा नहीं। हरा–भरा रहेगा। पानी न मिले तो भी चल जायेगा। धूप चिलचिलाती हो तो भी चलेगा। सूखने का नाम

नहीं लेगा। और पौधे सूख जाते हैं। यानि इस संसार के सारे रिश्ते किसी न किसी बात पर टूट भी जाया करते हैं, खटास भी आ जाती है, माता–पिता के भी रिश्ते में दरार आ जाती है, पिता–पुत्रा के रिश्ते में, गुरु–शिष्य के रिश्ते में दरार आ जाती है, पति–पत्नी के रिश्ते में भी दरार आ सकती है लेकिन वो ऐसा है कि हम उसको भूले रहें, वो हमको भूलेगा नहीं। होता क्या है? दो घनिष्ठ मित्रा हों, भाई हो, पिता–पुत्रा हों, यदि फोन करना बंद कर दें, 6 महीना, साल भर बात करना बंद कर दें, तो दोनों के रिश्तों में कुछ ऐसा लगता है कि अब प्रेम की उमंग नहीं रही लेकिन वो इतना बेशर्म कहिए इस दुनिया की प्रेम की भाषा में, 400 साल से ज्यादा आज हो गए माया के इस संसार में आए हुए। 400 साल से ज्यादा समय तक हमारी आत्मा धनी को भुलाये रखी लेकिन उन्होंने हमको नहीं छोड़ा। हमारे दिल में, प्राण की नली से भी नजदीक है, आसन मार करके बैठे हैं कि वाणी का प्रकाश पाकर कब परमधाम की ब्रह्मसृष्टि मेरी तरफ नजर करे। वो तो हमको देख रहे हैं। पल–पल हमारी खबर ले रहे हैं।

'कहे महामत तुम पर मोमिनों, दम दम जो बरतत।
सो सब इस्क हक का, पल पल मेहेर करत।।'

उनके पास मेहर के सिवा और कुछ नहीं है। संसार का कोई भी रिश्ता हमसे रूठ कर घृणा दे सकता है, दूरी रख सकता है लेकिन उनके पास घृणा और दूरी जैसे शब्द नहीं है। केवल हृदय में प्रेम ही प्रेम भरा है और केवल इतनी बात चाहते हैं कि 24 घंटे में सोकर उठने के बाद या सोते समय हमको इतना कर लेना है कि हम जी भर के निहार तो लें। एक घंटा नहीं कर सकते, आधा घंटा तो करें, आधा घंटा नहीं पन्द्रह मिनट तो करें। एक पल के लिए भी यदि हमने सब कुछ छोड़ दिया तो उतने क्षण के लिए भी राजजी हमारे दिल में आ जाएंगे। यदि

हम परिवार के साथ रात को सोते समय बातें कर सकते हैं, टी. वी. देख सकते हैं, एक दूसरे की निंदा कर सकते हैं, सवेरे उठ करके और कामों में लगा सकते हैं तो ये भी तो हम कर सकते हैं कि सोने से पहले हम उनको दिल में बसा लें। परिणाम क्या होगा? सारी रात उनकी याद में गुजरेगी। आप सोये रहेंगे लेकिन आपकी आत्मा अपने प्राणेश्वर को पल–पल देखती रहेगी। चितवनि के प्रसंग में मैंने समझाया था कि रात्रि को भोजन का तामस और निद्रा का तामस दोनों मिल जाते हैं लेकिन यदि आपने सोने से पहले राजजी को याद कर लिया तो रात्रि में आपका पूरा मन सात्विकता से भरा रहेगा। सवेरे उठेंगे तो एक ताज़गी भरी रहेगी और उठते ही आप राजजी के प्रेम में तुरंत डूब जायेंगे। धनी के प्रेम की अग्नि ऐसी है कि हजारों क्या लाखों जनमों के पापों को एक पल में वैसे ही जला सकती है जैसे रूई के पहाड़ में एक चिन्गारी लग जाए, क्षण भर में पहाड़ जलकर के राख हो जाता है। संसार के कर्मकांडों से परे है धनी के प्रेम की राह। केवल अपने दिल में उस प्रियतम की छवि को बसाना होता है और जिसने बसा लिया उसने अपने दिल में आनंद के सागर को साक्षात् देख लिया होता है। उसको पाने के लिए मंदिर मंदिर भटकने की जरूरत नहीं होती। आज, सुंदरसाथ में क्या विचारधारा फैल रही है कि हमारे सद्गुरू का मंदिर ये है, उनके सद्गुरू का मंदिर ये है। अक्षरातीत को मंदिरों की परिधि में बांध दिया गया है। ये बात तो ध्यान में रखिए कि अक्षरातीत को किसी भी मंदिर के कैदखाने में नहीं बांधा जा सकता। घूम फिर करके आपको अपने दिल के अंदर ही झांकना पड़ेगा। यदि आपके दिल के अंदर प्रेम नहीं है, तो हीरे मोतियों के मंदिर बना लीजिए, राजजी उसमें आने वाले नहीं हैं। जब राजजी आएगें, आपके प्रेम रूपी दिल में आयेंगे। इसलिए वाणी में कहा है–

'सेहेरग से नजीक, आड़ा पट न द्वार।
खोली आंखें समझ की, देखती न देखे भरतार।।'
कोई बंधन नहीं है। आप किसी मंदिर में जायेंगे तो पुजारी जी कहेंगे कि अभी राजजी शयन कर रहे है, अभी परदा नहीं खुलेगा लेकिन दिल के मंदिर में तो देखने पर कोई रोकने वाला नहीं है। 24 घंटों में जब चाहो आंखे बंद करो और अपने दिल के अंदर बैठे हुए राजजी को आप प्रत्यक्ष देख सकते हो। अभी आप पन्नाजी जाइए तो वहां भी आप इतनी तेज धूप में परिक्रमा नहीं कर सकते लेकिन आंखें बंद कीजिए, अपने दिल रूपी परमधाम में संपूर्ण 25 पक्ष नजर आ जाएंगे। आपको कोई रोकने वाला नहीं है। पैर भी नहीं थकेंगे। बस इतना करना होगा कि मन की जो तरंगें संसार में भटक रही हैं तृष्णाओं के जाल में, उनको उधर से हटाकर केवल राजजी की तरफ केन्द्रित करना पड़ेगा।
'क्यों कहूं सलूकी नाजुकी, नूर तजल्ली नूरजमाल।।'
महामति जी की आतम कह रही है कि अक्षरातीत के मुखारबिंद की सलूकी–सुंदरता और कोमलता को मैं कैसे व्यक्त करूं? सौंदर्य में कोमलता और आकर्षण का होना प्रमुख है। अक्षरातीत का मुखारबिंद उज्ज्वलता में लालिमा लिये हुए है। इतना कोमल है, कोमल कैसे होता है? जैसे जब आप क्रोध में होंगे तो आपकी आंखें लाल हो जायेंगी। चेहरा क्रूर दिखेगा और जब मां अपने बच्चे को लाड़ करती है, प्यार करती है तो मां का मुख जो गुस्सा करते समय कठोर दिख रहा था, कोमल हो जाता है। स्वाभाविक प्रवृत्ति है। ये तो एक संसार के दृष्टांत से मैंने समझाया। अक्षरातीत का मुखारविंद सौंदर्य का, प्रेम का और कोमलता की पराकाष्ठा है। उससे अधिक नहीं कहीं सौंदर्य मिलेगा, न प्रेम मिलेगा और न आकर्षण मिलेगा। परमधाम की आत्माओं के लिये ये सबसे बड़ी चीज है कि इस

झूठे संसार में हम कहां से कहां भटक गए। आपको दिल्ली जैसे महानगर में एक से एक अच्छी कोठियां देखने को मिलेगी, अच्छी कारें मिलेगी, अच्छी सड़कें मिलेगी, अच्छे भोजन भी मिलेंगे लेकिन सबका सेवन कर लीजिए। अंत में क्या मिलेगा? केवल एक निराशा। मन कुछ और चाहता है। मन को शाश्वत प्रेम चाहिए, शाश्वत शांति चाहिए, शाश्वत आनंद चाहिए। वो तो बाहर के पदार्थों में कभी नहीं मिल पायेगा। हमें अपनी आत्मा के धाम हृदय में उस प्रेम को, आनंद को, शांति को खोजना होगा। महामति जी की आतम सब सुंदरसाथ को उस राह पर ले जा रही है। इस राह पर चलेगा भी कौन? जो परमधाम की ब्रह्मात्मा होगी, वही परमधाम की चितवनि कर सकती है अन्यथा संसार के लोग तो संसार में ही डूबना उतराना जानते हैं। किस को पड़ी है कि आंखे बंद करे, अपने घुटने तुड़वाये लेकिन ऐसा न समझिये कि केवल घुटने मोड़कर बैठने पर ही राजजी मिलेंगे। यदि आप घुटने मोड़ कर बैठते हैं, हृदय में प्रेम नहीं है तो राजजी आपको नहीं मिल सकते। आप से बैठा नहीं जाता, मत बैठिए, कुर्सी पर तो बैठ सकते हैं। सोफे पर तो बैठ सकते हैं। आप अपने हृदय का सिंहासन सजा लीजिए।

'अर्स तुमारा मेरा दिल है, तुम आए करो आराम।
सेज बिछाई रुच रुच के, एही तुमारा विश्राम।।'

जब आप राजजी को याद करते हैं, तो आपके हृदय मंदिर में केवल राजजी रह जायें। कोई तृष्णा नहीं। जब आप प्रेम लेकर के उनको पुकारेंगे, तो वो बहरे नहीं हैं। वो सब कुछ देख रहे हैं। जहां दूरी हो, तब तो प्रश्न है। बैकुंठ वासी भगवान को बैकुंठ से आने में कुछ देर लग सकती है। पौराणिक कथा है कि भगवान विष्णु अपने वाहन गरुड़ को भी भूल गये थे, गजराल की रक्षा करने के लिए। और सुदर्शन चक्र से मारकर उसको

बचाया था। उनको तो बैकुंठ से आना पड़ा था। आपके अक्षरातीत को परमधाम से आने की जरूरत ही नही है। 'इन गुन्हेगारों के दिल को अर्स कर बैठे मेहेरबान।' उन्होंने तो आपके दिल को ही परमधाम बना लिया है। क्योंकि 'ऊपर तले अर्स न कह्या, अर्स कह्या मोमिन कलूब।' आपका दिल अर्स है और उस अर्स दिल में राजजी तब तक नहीं मिल सकते जब तक इसमें प्रेम का रस नहीं डाला जायेगा। प्रेम कब आयेगा? जब आप प्रेम के सागर को दिल में याद करेंगे। आप का जीव स्वाभाविक रूप से कठोर है। जीव कठोरता से किसी से व्यवहार कर सकता है लेकिन आत्मा का जो दिल है वो तो अतिशय कोमल है। आत्मा का दिल परआतम का प्रतिबिंब होता है। जीव को कोमल बनाने के लिए ही तो ध्यान साधना सब कुछ कराई जाती है। महाराजा छत्रासाल जी को देखिये, जब वो युद्ध के मैदान में होंगे तो हजारों से उन्हें लड़ना पड़ता होगा। यदि वो युद्ध के मैदान में महात्मा गांधी की तरह अहिंसावादी बन जायेंगे, तो शत्रु उनको मार डालता। महाराजा छत्रासाल जब युद्ध के मैदान में तलवार चलाते हैं तो उनमें क्रूरता नहीं है। वो युद्ध का कर्त्तव्य पूरा कर रहे हैं। लेकिन उनका हृदय फूल की पंखुड़ी की तरह कोमल है। उनके अंदर परमधाम की आत्मा बैठी है। जब वो ध्यान में बैठते हैं तो संसार को भूल जाते हैं। अपने सिंहासन को भूल जाते हैं, अपने राजा होने के भाव को भी भूल जाते हैं। वे मात्रा सुंदरसाथ अपने को मानने लगते हैं। और उसमें भी साकुंडल रूप में अपने को मानते हैं। हमारे साथ भी ऐसा ही होना चाहिए। सांसारिक उत्तरदायित्वों को पूरा करते समय हमारे जीव का स्वभाव कुछ भी हो लेकिन जब राजजी के प्रेम में डूबते हैं तो हम इस तरह से कोमल बन जाएं कि हमारे और धनी के बीच में संसार नाम की कोई चीज ही न आने पाए।

'क्यों कहूं सलूकी नाजुकी, नूर तजल्ली नूरजमाल।।'
जमाल का अर्थ होता है सौंदर्य। प्रेम भरा सौंदर्य। नूरजमाल यानि नूरी वो स्वरूप जिसमें सौंदर्य ही सौंदर्य भरा हो। ये अरबी का शब्द है, फारसी का। नूरजमाल का अर्थ होता है जिसमें तेज हो। जो तेजोमय स्वरूप है, वो है अक्षर और जो प्रेममयी स्वरूप है, वो है अक्षरातीत। अक्षरातीत के मुखारबिंद पर कितनी कोमलता है, कितनी सुंदरता है। लालिमा की आभा है, उज्ज्वलता के अंदर। महामतिजी की आतम कह रही है कि उस मुखारबिंद की शोभा को यदि हम देख लेते हैं तो हमारे लिए संसार का कोई भी बंधन नही रह जायेगा।
'बांहें मेरे मासूक की',–आतम को राजजी देख रहे हैं उसके धाम हृदय में बैठकर, आशिक बनकर। जब वाणी मिल जाती है, तो आतम धनी को देखना शुरु कर देती है। अब आशिक कौन हो गया? आत्मा। शिविर में एक सुंदरसाथ ने प्रश्न किया था कि राजजी को मैं प्रेमिका कैसे बना सकता हूँ? आशिक और माशूक को उन्होंने प्रेमी और प्रेमिका के सांसारिक स्तर पर देख लिया। जहां संसार के सारे भाव समाप्त हो जाते हैं, परमधाम का आशिक या परमधाम का माशूक वहां से शुरु होता है। ये पुरुष का अहम् होता है और यही अहम् उसके और धनी की राह में सबसे बड़ी बाधा है। समर्पण कौन करता है? नारी। पुरुष समर्पण नहीं करता। पुरुष पुरुषार्थ करता है और सोचता है कि मैं पुरुषार्थ से उसको प्राप्त कर सकता हूँ। प्रेम कहता है कि तुम अपने को मिटा दो। समाधि की प्राप्ति कब होती है? जब परमात्मा पर सर्वस्व न्यौछावर हो जाया जाए, तब उसकी प्राप्ति होती है।
पतिव्रता अपने पति के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर देती है, रोम–रोम, तन, मन, धन जो कुछ उसका होता है, पति के लिए होता है। यही कामना प्रेम लक्षणा भाक्ति में की जाती है। आत्मा

ने जिस तन को पकड़ा है, उस तन की जो भी उपलब्धियां हैं, सब को मिटा दें प्रेम में, केवल राजजी दिखाई देने लगें। उसको अपने शरीर का भी आभास न हो, उसको कहते हैं सर्वस्व समर्पण। और वेद में यही बात कही गयी है कि परमात्मा को पाना है तो जैसे नारी का समर्पण होता है, सच्चिदानंद परब्रह्म के लिए, आपका वैसा समर्पण नहीं होगा तो राजजी नहीं मिल सकते। यदि आपके मन में भावना है कि मैं शुकदेव की तरह ब्रह्मचारी हूं, भीष्म पितामह की तरह ज्ञानी हूं, गौतम बुद्ध की तरह तपस्वी हूं तो आपको कुछ नहीं मिलेगा। परमधाम की झलक आपको कभी नहीं मिल सकती। आप इन सारी उपलब्धियों को कूड़ेदान में फेंक दीजिए। आप कितने बड़े योगी हैं, कितने बड़े तपस्वी हैं, कितने बड़े ब्रह्मचारी हैं, कितने बड़े विद्वान हैं, आपके मन में इसका लेशमात्रा भी भाव न रह जाए। आपके अंदर केवल प्रेम रह जाये कि मुझे अक्षरातीत को देखना है। अक्षरब्रह्म से बड़ा तो कोई नहीं हो सकता। सुकदेव, सनकादिक, कबीरजी, विष्णु भगवान, शिव, ये सृष्टि में सबसे बड़े योगी हैं, सबसे बड़े तपस्वी हैं, सबसे बड़े विद्वान हैं और ये किसको जानते हैं? अक्षर की विभूति को। सबलिक तक कोई जाता है। कोई अव्याकृत तक जाता है, कोई केवल तक जाता है। सत्स्वरूप तक इनमें कोई नहीं जा पाया और सत्स्वरूप से परे हैं अक्षरब्रह्म जो परमधाम में रहते हैं, चांदनी चौक में जाते हैं, राजजी के ही अंग हैं, लेकिन वो स्वरूप भी मूल मिलावे में जाने का अधिकार नहीं रखता। वो स्वरूप भी श्यामा जी को देखने का अधिकार नहीं रखता तो आपका जीव कैसे देख सकता है? संसार का ज्ञान, संसार की भक्ति, संसार की साधनाएं उस अक्षरातीत तक नहीं ले जा सकती। आपको केवल प्रेम में डूबना पड़ेगा। और प्रेम कहता है, स्वयं को मिटादो। ये ही नहीं हो पाता। हिमालय में बैठा हुआ योगी

हमेशा सोचता रहेगा कि मैंने घर द्वार को ठोकर मारकर गुफाओं में इतनी तपस्या की है। ये भी एक बंधन है। आप संसार के सारे ग्रंथों का ज्ञान ग्रहण कर लेते हैं और मन में गांठ बांध लेते हैं कि मैं इतना बड़ा विद्वान बन गया हूं, ये भी एक बंधन है। वाणी की सारी चौपाइयां आपको कंठस्थ हो जायँ, अच्छी व्याख्या कर लेगें, मन में यदि गांठ बंध गई कि मेरे से अच्छा कोई वाणी नहीं जानता, तो ये एक बहुत बड़ा बंधन है। चितवनि में इन सबको हटा देना पड़ेगा। आप क्या हैं? इसको भुला दीजिए, तब चितवनि लगती है। इसको कहते हैं आशिक होना। यानि आपने सब कुछ धनी को पाने के लिए मिटा दिया तब तो आप राजजी के चाहने वाले हो गए। लेकिन प्रश्नकर्ता जो प्रश्न करता है कि राजजी को मैं प्रेमिका बना सकता हूं कि नहीं? राजजी तो तैयार हैं। प्रेमिका मतलब इस दुनिया की प्रेमिका नहीं। प्रेमिका का मतलब जिससे प्रेम किया जाए। राजजी से आप प्रेम करते हैं तो आप आशिक कहलाते हैं। लेकिन प्रश्नकर्ता का भाव क्या है कि मेरा पुरुष भाव जाने न पाये। पुरुषभाव या स्त्री भाव, ये तो दुनिया के बंधन हैं। ये आकृति बस अलग है। अंदर तो चेतना एक तत्व है। जो अंदर जीव बैठा है, न वो स्त्री है न पुरुष है। वो तो वासना के अनुसार वो जीव कभी किसी जन्म में स्त्री बन जाता है, किसी जन्म में पुरुष बन जाता है। जब अध्यातम के ऊँचे शिखर पर पहुंचते हैं तो कोई भी बंधन नहीं रह जाता कि कौन स्त्री है, कौन पुरुष है। ये सारे नियम, सारी मर्यादाएं तो संसार को चलाने के लिए सामान्य लोगों के लिए है। जब आप चितवनि में बैठिए, तो केवल आपनी आत्मा को देखिये, अपनी परआतम को देखिये। इस मिट्टी के पुतले को नहीं। आपकी आयु 60 साल की है या आप 15 साल के किशोर हैं, स्त्री हैं कि पुरुष हैं। सबको भुला दीजिए। आप एक ही भावना रखिए कि मेरा

स्वरूप श्यामाजी का स्वरूप है, मैं अक्षरातीत को देख रही हूँ। यदि माधुर्यता का रस आया, प्रेम का रस आया तो आपके आत्मचक्षुओं के सामने युगल स्वरूप दिखाई देंगे। यदि ये भावना नहीं आती तो युगल स्वरूप आपके त्याग तपस्या से नहीं आ सकते। आपके ब्रह्मचार्य की साधना से नहीं आ सकते। आपके अध्ययन के साधनों से नहीं आ सकते। ब्रह्मचर्य का अर्थ क्या होता है? ब्रह्म में विचरण करना। अक्षरातीत की शोभा को जो देखते हैं, वास्तव में वही ब्रह्मचारी हैं। आपको तारतम वाणी का प्रकाश मिला है, उस तारतम वाणी के प्रकाश में आप धनी से केवल विशुद्ध प्रेम कीजिए, निर्विकार प्रेम, जिसमें उनको देखने की चाहत हो जाए, संसार की कोई चाहत न रह जाए, वही चाहत आपको धनी के पास ले जाएगी क्योंकि यदि अक्षरधाम में रहते हुए अक्षरब्रह्म को भी ये सौभाग्य प्राप्त नहीं होता तो संसार की किसी भी साधना से अक्षरातीत को नहीं पाया जा सकता।

'बांहें मेरे मासूक की, प्यारी लगें मेरी रूह।'

इंद्रावती जी की आतम कह रही है कि राजजी की बांहें मेरी आत्मा को बहुत प्यारी लगती हैं। कहने का भाव क्या है? जैसे–जैसे आपकी सुरता राजजी के नख से सिख तक की शोभा को देखेगी, उस शोभा में आपकी आत्मा इतनी डूब जायेगी कि आपको और कुछ अच्छा ही नहीं लगेगा। प्रेम का आकर्षण सबसे बड़ा होता है। आप देखते हैं, शेर पता नही कितनी क्रूरता से किसी भैंसे को, बैल को या किसी भी जानवर को मारता है। उसकी गर्दन में अपने दांत गढ़ा लेता है और उसका खून पी जाता है निर्दयतापूर्वक। लेकिन वही शेर जब शेरनी के सामने आता है, तो शेर असहाय हो जाता है, जैसे उसके पास कोई बल नहीं हो। शेर का पौरुष कहां चला जाता है? नाग जब फुंकार मारता है तो सबके रोंगटे खड़े हो जाते हैं,

लेकिन वही नाग नागिन के सामने आता है, तो अपना क्रोध नहीं प्रदर्शित कर सकता। नागिन के सामने वो भी असहाय हो जाता है। परमधाम के प्रेम का बल लेकर के आप चलेंगे तो राजजी के नख से सिख तक का आपको एक मधुर एहसास होगा। जिस अंग में आपकी नजर जाए, उसी में अपने को डुबा दीजिए। 'एक अंग देखन लगी, सो तितहीं भई गलतान।' गलतान का मतलब ? गलितगात हो जाना। आप की बुद्धि कुंठित हो जाए। आपका कुछ और सोचना विचारना बंद हो जाए। जब आप चितवनि करते हैं तो ये मत सोचिए कि 4 हारों का ध्यान करूं, 5 हारों का या 6 हारों का करूं। जहां बुद्धि की दौड़ है, वहां प्रेम नहीं। बुद्धि की दौड़ वहां तक ले जानी चाहिए, चयन करते समय, जैसे कोई कन्या अपना पति चुनती है, तो पहले देखती है कि मेरे अनुकूल कौन होगा? जब आपने नारायण से रिश्ता तोड़ लिया, निराकार से रिश्ता तोड़ लिया, आपके हृदय ने गवाही दे दी सभी धर्मग्रंथों की साक्षी से कि एक अक्षरातीत के सिवा और कोई नहीं है। अक्षरातीत के चरणों में आने के बाद जब आप उनकी शोभा का ध्यान करते हैं तो बुद्धि की दौड़ को कूड़ेदान में फेंकना ही पड़ेगा। यदि आप तर्क वितर्क, संशय के घेरे में रहेंगे, तो आपके अंदर प्रेम का रस कभी फल नहीं दे सकता, आपकी सुरता परमधाम के 25 पक्षों में कभी नहीं घूम सकती। महामति जी की आतम कह रही है कि अक्षरातीत की बांहें मेरी आत्मा को बहुत ही प्यारी लग रही हैं 'हक हुकम यों कहावत',—ऐसा मैं क्यों कह रही हूं, क्योंकि राजजी का हुकम ही ऐसा कहलवा रहा है। मैं नहीं कह रही हूं। महामति जी ने कह दिया—'मेरी बुद्धि लुगा न निकसे'। मैंने तो इस वाणी का एक अक्षर भी नहीं कहा है। 'हक हुकम यों कहावत' मेरे अंदर राजजी का आवेश ही ऐसा कहलवा रहा है। साक्षात् राजजी बैठकर मेरे अंदर से ऐसा ही कहलवा रहे हैं कि

महामति! तू सुंदरसाथ को बता कि अक्षरातीत की बांहें कितनी प्यारी हैं और कितनी सुंदर हैं।

'सो वाही जाने हकहू।।' राजजी का जो आवेश मेरे अंदर से कहलवा रहा है, वही एकमात्रा जानता है कि अक्षरातीत की बांहों का सौंदर्य क्या है। ये उस अवस्था का वर्णन है, मारफत की अवस्था का जिसमें कोई मुख से शब्द नहीं निकल सकते। कुछ बोला नहीं जा सकता। आप देखते हैं, एक भरा घड़ा हो, उसको सिर पर ले जाइए, पानी नही आवाज करेगा। आधा घड़ा भरा हो, और उसको सिर पर ले जाइए, उसमें से आवाज आनी शुरु हो जाती है। जब आप प्रेम के रस में डूब जाएंगे, ज्ञान की पूर्णता में डूब जाएंगे तो आपको मौन होना पड़ेगा। उपदेश देते देते ऐसी अवस्था आ जाएगी, जो मौन की अवस्था होगी, जिसमें कुछ बोला ही नही जायेगा। जब सामान्य अवस्था में व्यक्ति होता है तो बहुत ज्यादा बोलना शुरु कर देता है। वो सोचता है कि मेरे जैसा संसार में कोई है ही नहीं। लेकिन संसार के सारे ग्रंथों को पढ़ लेने के बाद एक दिन मौन की अवस्था आ जाती है। आप परमधाम की चर्चनी को याद कीजिए, चर्चनी के चार विद्वान बैठ जाएंगे, नोंकझोंक शुरु हो जायेगी। ये ऐसा नहीं है, ये ऐसा नहीं है, ये इस वृत्ति में ऐसा लिखा है लेकिन जब सारे परमधाम को आपने घूम के देख लिया, तो अब या तो आप कुछ बोलोगे नहीं, बोलोगे तो अपनी बुद्धि से नहीं बोलोगे, किसी और के आदेश से बोलोगे। यही बात महामति जी की आतम कह रही है कि राजजी का जो आवेश मेरे अंदर बैठकर कहला रहा है, मैं वो कहती जा रही हूं। असल स्वरूप क्या है, वो केवल राजजी ही जानते हैं। जिस नख के अंदर करोड़ों सूर्यों की ज्योति छिपी है, आप कल्पना कर सकते हैं कि राजजी के दोनों भुजाओं का सौंदर्य क्या होगा। राजजी के दोनों गालों का सौंदर्य क्या होगा? होठों का

सौंदर्य क्या होगा? क्या हमारी माया की बुद्धि इसका आंकलन कर सकती है? संसार प्रेम खोजता है। पशु–पक्षी जितने प्राणी हैं, सभी प्रेम खोजते हैं। दूर को तो छोड़िए, वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है, जब किसी वृक्ष को काटने का प्रयास किया जाता है, उसको पता चल जाता है कि मुझे काटा जा रहा है, लेकिन वो बोल नहीं सकता। इसका मतलब ये न समझ लीजिए कि आप खेती करना छोड़ दें क्योंकि उसके अंदर तो जीव है। वो सुषुप्ति में है। वृक्षों के पास संगीत सुनाइये, फसलों के पास संगीत सुनाइये, फसल बहुत अच्छी होती है क्योंकि उसमें जो चेतना है, वो भी संगीत सुनना चाहती है। कसाईखाने के पास कोई अच्छी फसल नहीं हो सकती क्योंकि वहां का आभामंडल ही ऐसा होगा जिसमें क्रूरता झलकती है। आप देखेंगे, किसी भी साधु महात्मा की जहां कुटिया होगी, वहां वृक्ष खिले खिले नजर आएंगे। वहां के फूल में और किसी कसाईखाने के अंदर आप गुलाब का फूल लगा दीजिए, दोनों फूलों में बहुत अंतर दिखेगा, क्योंकि वहां के अणु–अणु में क्रूरता झलकती है। और वो क्रूरता प्रेम से उल्टी होती है।

'अंग रंग सलूकी सुभानकी, चकलाई उज्जल गौर।'

महामतिजी की आतम कह रही है कि अक्षरातीत के एक एक अंगों का रंग क्या है और उनकी सुंदरता क्या है? सलूकी का तात्पर्य है सुंदरता। उज्ज्वलता में लालिमा लिये हुए जो सौंदर्य का रंग है, उसके लिए यहाँ चकलाई शब्द उपयोग किया गया है। अक्षरातीत का नख से शिख तक का सिनगार कैसा है? उज्ज्वलता में लालिमा। 'सुभान' का तात्पर्य ही है 'राजजी'। सुंदरसाथ में एक भ्रांति चल पड़ी है कि श्यामाजी को सुभान कहते हैं। वाणी में कहीं भी श्यामाजी को सुभान नहीं कहा गया है। 'छाती मेरे खसम की जिनका नाम सुभान।' सुभान यानि राजजी, श्यामाजी नहीं।

'नाम सुनत इन अंग के, जीवरा न होत चूर चूर।।'
ये हमारे लिए सिखापन है कि हमारा हृदय कितना कठोर हो गया है कि इन अंगों का वर्णन सुन रहा है कि राजजी का मुखारबिंद ऐसा है, होंठ ऐसे हैं, आंखे ऐसी हैं, गाल ऐसे हैं, कान इतने सुंदर आए हैं, गला इतना सुंदर आया है, कंधे ऐसे सुंदर आये हैं और हमारा जीव कितना कठोर बना हुआ है। शेर को देखिये, शेरनी के लिए अपने प्राण छोड़ देता है। हाथी कैसे शिकारी के बंधन में आता है। शिकारी काले कागज की हथिनी बनाते है। गद्दे के ऊपर घासफूस रखकर के वो कागज की हथिनी को खड़ा कर देते हैं। उसका आलिंगन करने के लिये हाथी आता है और गड्डे में गिर जाता है और अपने को बंधन में कर लेता है। महामतिजी ने दृष्टांत दिया है पतंगे का, 'दीवे टाल्यो ज्यारे सुंन सोहाग, त्यारे पतंग पाम्यो वेराग।' जब दीपक जलता है तो पतंगा उसपर अपने को फना कर देता है। पतंगा सोचता है कि जब मेरा सुहाग अंधेरा नहीं रहा। तो मैं कैसे रह सकता हूं। महामति जी का दृष्टांत यही है कि इस दुनिया का नाचीज छोटा सा कीड़ा मकोड़ा जब अपने सुहाग के बिना एक पल भी दुनिया में नहीं रहता तो हम तो, परमधाम की ब्रह्मसृष्टि कहलाते हैं। हम इतने साल राजजी के बिना कैसे रह रहे हैं? महामति जी की आतम कह रही है कि कैसी हंसी की लीला चल रही है कि हम राजजी के अंगों का वर्णन सुन रहे हैं, वाणी में पढ़ रहे हैं फिर भी हमारा जीव चूर चूर नहीं हो रहा। चूर चूर होने का मतलब टुकड़े टुकड़े नहीं हो रहा।
यदि आपने अपने हृदय में प्रेम की अग्नि जला ली तो रात बिना राजजी को याद किये नींद नहीं आएगी। आपके मन में बेचैनी सी पड़ी रहेगी। आपको कहा जाए कि 10 करोड़ रुपया ले लो और राजजी को याद करना बंद कर दो तो आप यही कहोगे कि सारे ब्रह्मांड का राज्य भी हम ठोकर मार सकते हैं लेकिन

राजजी की शोभा को दिल में बसाना नहीं छोड़ सकते। परमधाम की ब्रह्मसृष्टियों के लिए सिनगार की वाणी में यही सिखापन दी जा रही है कि हमारा हृदय इतना कोमल बन जाए ताकि हमें संसार न दिखे, केवल राजजी के चरण कमल, नख से शिख तक की शोभा दिखे। संसार के उत्तरदायित्वों को निभाते हुए कहीं ऐसा न हो कि हम उत्तरदायित्वों को निभाने में ही सब कुछ भूले रहें। राजजी के प्रेम को खोते रहें। ऐसा नहीं है। पहली प्राथमिकता राजजी को दीजिए। उसके बाद कोई और रिश्ता है। रिश्तों को निभाइए जरूर लेकिन उनमें फंसिए नहीं। केवल धनी के प्रेम में फंसिए। वो प्रेम ही आपको शाश्वत आनंद देगा। सारा संसार अभी तो भटका पड़ा है। सुंदरसाथ को तो परमधाम की ब्रह्मवाणी सारे संसार में फैला देनी चाहिए थी। आज चितवनि सारा संसार कर रहा होता तो संसार का कितना कल्याण होता। संसार तो क्या करेगा। 90 प्रतिशत सुंदरसाथ नहीं कर पा रहे। 'आप देखो औरों को दिखाओ।' – ये वाणी का स्पष्ट उद्देश्य है। यदि ब्रह्मवाणी आज संसार में फैल गयी होती तो सारी दुनिया अखंड मुक्ति का आनंद सत्स्वरूप की पहली बहिष्त में जाकर कर लेती लेकिन हमने बड़े–बड़े मंदिर बनाये, खीर पूड़ियां, भंडारों में पैसा पानी की तरह उड़ाया, शादी विवाहों में पैसा उड़ाया। धन तो किसी का किसी के साथ जाने वाला नहीं है। आप का धन भी सब कुछ यहीं रह जाएगा। तन भी यही छूट जायेगा। कोठी बंगला सब यहीं छूट जाएंगे। आपने धनी से प्रेम में जो कुछ कमाया है, वही आपके साथ जाएगा। उससे बड़ी संपदा और कुछ नहीं है। जिसने अपने हृदय मंदिर में राजजी को बसा लिया वो सुंदरसाथ इत भी धन धन होगा और उत भी धन धन होगा।